Chapter- 3

तृतीय अध्याय

पात्र और परिवेश के सन्दर्भ में डॉ. मिश्र के उपन्यासों की भाषा

प्रास्ताविक

उपन्यास में आने वाले पात्र हमारी अपनी दुनिया के होते हैं। अतः राल्फ फॉक्स महोदय ने तो उपन्यास के पात्रों के लिए 'People' शब्द का ही प्रयोग किया है। उपन्यास एक यथार्थधर्मी विधा है, अतएव यथार्थ के निर्वाह के लिए सभी आयामों पर समुचित दृष्टि से विचार करना पड़ता है। उपन्यास के पात्र यथार्थ या वास्तविक प्रतीत होने चाहिए, और जब पात्रों की यथार्थता या वास्तविकता का सवाल आता है तो सीधे उनकी भाषा का सवाल भी उपस्थित होता है क्योंकि पात्र की भाषा का आधार वह किस वर्ग का है, किस वर्ण या जाति का है, वह किस व्यवसाय से जुड़ा हुआ है, वह स्त्री है या पुरुष उसकी अवस्था क्या है, इन सभी पक्षों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। पात्र की भाषा को परिवेश भी प्रभावित करता है। परिवेश को ही दूसरे शब्दों में देशकाल या वातावरण कहते हैं। देश अर्थात् प्रदेश विशेष और काल अर्थात् समय । अलग-अलग प्रदेश के लोगों की भाषा अलग-अलग प्रकार की होती है। बल्कि एक ही प्रदेश में भी भाषा के भिन्न-भिन्न स्तर पाए जाते हैं। कहने को मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों की भाषा हिन्दी है किन्तु इनमें अनेकों बोलियाँ और उपबोलियाँ प्रचलित है। तभी तो कहा गया है - 'कोश कोश पर बदले पानी, चार कोश पर बानी।' चार कोश अर्थात् पंद्रह-सोलह मील का अन्तर। अरे, कई बार तो एक ही गाँव या कस्बे की बोली में जातिगत विभिन्नता के कारण अन्तर पड़ जाता है। रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास में बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव को लिया गया है परन्तु उस एकमात्र गाँव के लोगों की बोली में कई प्रकार की विभिन्नता पाई जाती हैं। खत्री टोला की भाषा एक है, तो कुर्मी टोला की भाषा उससे कुछ भिन्न। तंत्रीमां टोला तथा संथाल टोला की भाषा भी भिन्नता लिए हुए है। गुजराती के कवि-आलोचक डॉ. उमाशंकर जोशी ने 'मैला आँचल' की भाषा पर लिखते हुए कहा था कि उसमें भाषा और बोली के लगभग डेढ़सो 'टोन्स्' उपलब्ध होते हैं।[1] ग्रामीण क्षेत्र और नगरीय क्षेत्र की भाषा में भी अन्तर पाया जाता है। जहाँ तक डॉ. मिश्र के सामाजिक उपन्यासों की भाषा का सम्बन्ध है वह बिहार प्रदेश की भाषा है। लेखकीय भाषा में तो मानक हिन्दी का प्रयोग हुआ है, परन्तु पात्रों की भाषा में प्रदेशगत अन्तर पाया जाता है। पौराणिक उपन्यासों में पौराणिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए अधिकांशतः संस्कृत बहुला भाषा का प्रयोग हुआ है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा का प्रयोग हुआ है। उदाहरणतया उनके 'पीताम्बरा', 'गोबिन्द गाथा' जैसे उपन्यासों में क्रमशः मीराबाई तथा गुरु गोविन्दसिंह का जीवन वर्णित होने के कारण उनकी

भाषा में क्रमशः राजस्थानी तथा पंजाबी भाषा का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। द्वितीय अध्याय में कथावस्तु के आधार पर डॉ. मिश्र की भाषा पर विचार किया गया था। प्रस्तुत अध्याय में हम पात्र और परिवेश इन दो आयामों को ध्यानार्ह रखते हुए डॉ. मिश्र के भाषा को विश्लेषित करने का यत्न करेंगे।

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में पाए जाने वाले विभिन्न वर्ग, वर्ण, जाति और व्यवसाय के पात्रः

(क) विभिन्न वर्ग के पात्र

डॉ. मिश्र के सामाजिक उपन्यासों में 'एक और अहल्या', 'सूरज के आने तक', 'लक्ष्मण-रेखा' तथा 'नदीं नहीं मुड़ती' आदि उपन्यास आते हैं। वर्ग की दृष्टि से विचार करे तो डॉ. मिश्र के सामाजिक औपन्यासिक पात्रों को हम उच्च वर्ग, उच्च-मध्य वर्ग, मध्य-वर्ग तथा निम्न वर्ग में विभाजित कर सकते हैं। उच्च वर्ग के पात्रों में विश्वास आताहै (एक और अहल्या) जो नवधनिक वर्ग से सम्बन्ध रखता है। 'नदीं नहीं मुड़ती' के विश्वास मुखर्जी वनों के ठेकेदार हैं अतः उनको भी हम उच्च वर्ग में गिन सकते है। उच्च-मध्य वर्ग में मनीष (एक और अहल्या), सागर चौधरी, विपीन (नदी नहीं मुड़ती), मुहम्मद सत्तार पं. देवीशरण त्रिपाठी (सूरज के आने तक), गीतिका (लक्ष्मण-रेखा) आदि पात्रों को हम उच्च-मध्य वर्ग में रख सकते हैं। मध्य वर्ग के पात्रों में सावित्री, विश्वमोहन, पृथा, जयश्री, श्रीधर, पृथा का फुफेरा भाई, मोदी (एक और अहल्या), पं. गोकुल झा, मुरारी पंडित (नदी नहीं मुड़ती), नूनूबाबा, राधा, निरंजन ठाकुर, मनोहर राय (सूरज के आने तक), नवीन, विश्वंभर (लक्ष्मण-रेखा) आदि पात्रों की गणना कर सकते हैं। निम्न वर्ग के पात्रों में लालमोहर, महादेव, नारायण, रुपा (सूरज के आने तक), मुहम्मद इस्माइल (लक्ष्मण-रेखा) प्रभृति पात्रों को हम निम्न वर्ग में रख सकते हैं।

पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास एक यर्थाथधर्मी विधा है और उसमें यथार्थ के निर्वाह हेतु पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग होता है। पात्र जिस वर्ग का होता है उसकी भाषा की तदनुरुप होती है। यहाँ पर उपर्युक्त सामाजिक उपन्यासों के नाना वर्ग के कुछेक पात्रों की भाषा को लेकर उसे सोदाहरण विश्लेषित करने का हमारा उपक्रम है।

'एक और अहल्या' का विश्वास नवधनिक वर्ग का व्यक्ति है। उसके पास वैभव, विलास और सम्पन्नता तो है परन्तु संस्कार जैसी कोई चीज नहीं है। पृथा का

विवाह इसी विश्वास से हुआ था। पृथा के पिता जब उसे मिलने जाते है तब सौ-सौ के पाँच नोट उनकी पोकेट में ठूंसकर विश्वास अपने श्वसुर से कहता है - ''लीजिए यह यहाँ तक आने-जाने का भाड़ा और हां विशेष चेष्टा न करें, आप पृथा से मिलने का तो अधिक अच्छा क्योंकि मैं चाहता हूँ कि जितना शीघ्र वह आपके यहाँ के संस्कारों से मुक्त हो जाए, उतना ही अच्छा।''[2] विश्वास की इस भाषा से उसके अपने संस्कारों पर प्रकाश पड़ता है। वह पृथा के संस्कारों को बुरा कहता है। वस्तुतः नवार्जित संपत्ति की चकाचौंध में वह भूल गया है कि संस्कार किसे कहते हैं। वह पृथा को वी.डी.ओ पर गन्दी ब्ल्यू फिल्में दिखाने का आग्रह करता है और पृथा के विरोध पर गुस्से में आकर कहता है - ''तुम रह गई एकदम देहातन''विश्वास की इस बात पर पृथा कहती है - ''क्या इन गन्दी चीजों को देखना ही शहरी होना है?'' इसके जवाब में विश्वास कहता है - ''ये गन्दी है? जीवन की सच्चाई तो यही है - यथार्थ। यथार्थ से क्यों भागती हो?''[3]

पृथा और विश्वास की उपर्युक्त बातों से विश्वास जिस नवधनिक वर्ग का सदस्य है उसके संस्कार या कुसंस्कार बोलते हैं।

'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास के विश्वास मुखर्जी जंगलों के ठेकेदार है और उसी ठेकेदारी के बलबूते उन्होंने लाखों-करोडों रुपए कमाए हैं। अतः उनको हम आर्थिक दृष्टया उच्च वर्ग में रख सकते हैं। एक स्थान पर उनकी बेटी गीतिका के विवाह की चर्चा चलती है। गीतिका विश्वंभर के साथ विवाह के प्रस्ताव की बात अपने पिता के पास रखती है। गीतिका, विश्वास मुखर्जी और उनकी पत्नी के बीच जो वार्तालाप होता है, वह इस प्रकार है-

''विश्वंभर ! यह तो जाना-सुना नाम लगता है।'' पिताने कहा।

''हाँ यह एक पत्रकार है, पर्यावरण के विरुद्ध लिखता है।''

''अरे बाप रे, पर्यावरण-प्रेमियों के तो साए से भी मैं दूर रहता हूँ।'' विश्वासमुखर्जीने कहा, ''यह नहीं चलेगा।''

''उसमें बहुत संभावनाएं है।''गीतिका अड़ी।

''होंगी। अधिक-से-अधिक, जंगलों की खाक छानेगा। पेड़ो से चिपकेगा और क्या?''

''वह अच्छा लिखता है, विश्व स्तर पर भी नाम कमा सकता है।''

''हिंदुस्तान में ही कुछ कर ले तो बड़ी बात है, विश्व में उससे बड़े-बड़े पर्यावरण-शास्त्री भरे पड़े हैं।''

''तो तुम्हें इसमें एतराज क्या है?'' माँ को मुँह खोलना पड़ा, 'पढ़ा-लिखा, जाना-

पहचाना व्यक्ति है तो हमारा नाम ही बढ़ेगा।''

''केवल नाम से क्या होता है?'' विश्वास मुखर्जी उखड़े।

''क्या मतलब?'' माँ ने ही पूछा।

''नाम से पेट भरता है? रोटी मिलती है?''[4]

उपर्युक्त वार्तालाप में विश्वास मुखर्जी जो वाक्य बोलते हैं, उन वाक्यों की भाषा से उनके भीतर का बैठा हुआ पूंजीपति और पूंजीवादी व्यक्ति बोल रहा है। वह वनों के ठेकेदार हैं। अतः पर्यावरणवादियों से उसे चीड़ है। पत्रकारिता आदि को भी वे ज्यादा अच्छा नहीं समझते हैं। यह प्रायः देखा गया है कि अमीर वर्ग के लोगों को 'स्टैंडर्ड' केवल पैसे में ही दिखता है। रुपए-पैसे का यह घमण्ड विश्वास मुखजी की भाषा में भी झलक रहा है।

गीतिका ने पहले नवीन नामक एक आवारा किस्म के कॉलेजियन युवक से विवाह किया था। वह कॉलेज का स्टुडण्ट लीडर था। और अपनी लच्छेदार राजनीतिक बातों में गीतिका को फँसा लेता है। बाद में गीतिका जब अपने पिता के यहाँ आती है तब उसके पिता विश्वास मुखर्जी कहते है - ''हमारी संपत्ति पर ही तो उस आवारा छोकरे की दृष्टि थी? नहीं तो इतनी सारी लड़कियों में वह उसे ही कैसे चुनता? सोचा एकलौती लड़की की सारी संपत्ति तो अपनी ही होनी है। एक बार वह प्राप्त हो जाए तो राजनीति-जनरीति की अस्थिरता से क्या लेना-देना? आज कुर्सी पर तो कल फुटपाथ पर।........ जिस लड़की ने मनमानी की हो, मेरी लंबी नाक को अपने लंबे नाखूनों से नोच लेने का कोई प्रयास नहीं छोड़ा हो उसका न तो इस घर पर अधिकार है न इस संपत्ति पर। पेट की भूख ही जोर मार रही है तो कर दो कुछेक लाख रुपएउसके नाम बैंक में। उसी के ब्याज पर वह अपने और उस प्रपंची पति के पेट पाल लेगी।'[5]'

विश्वास मुखर्जी जंगलों के ठेकेदार है। ठेकेदारी में खूब पैसे कमाए है। ऐसे लोगों का व्यक्तित्व और भाषा दबंग होती है। उपर्युक्त कथन में जिस प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है इससे इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

'नदी नहीं मुड़ती' उपन्यास के सहकारिता मन्त्री बिहार राज्य में मंत्री पद पर आसीन है, अतः उनकी गणना भी हम उच्च वर्ग के अन्तर्गत कर सकते हैं। वे मन्त्री हैं और मंत्रियों को भाषण देने की आदत-सी होती है। उपन्यास की नायिका सुषमा युनिवर्सिटी में बी.ए. में प्रथम स्थान प्राप्त करती है। उस उपलक्ष्य में एक कार्यक्रम होता है। उसमें सहकारिता मंत्री महोदय भाषण देते हुए कहते हैं - ''माननीय

बन्धुओ! यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यह आयोजन क्यों किया गया है। आपको ज्ञात ही है कि सुषमा देवी ने बी.ए. में प्रथम स्थान प्राप्त कर हमारा नाम ऊँचा किया है। हम आप सब की ओर से उनका अभिनन्दन करते हैं। फर्स्ट आना यों अपने में बड़ी बात हो या नहीं पर जिस परिस्थिति में बिना किसी सहारे, केवल अपने परिश्रम से जो इन्होंने यह स्थान प्राप्त किया है, यह बड़ी बात जरुर है। मेरा विश्वास है कि अगर सुषमा देवी को पर्याप्त सुविधाएँ मिली होतीं तो विश्वविद्यालय में क्या पूरे राज्य के सभी विश्वविद्यालयों को मिलाकर फर्स्ट आती......... आपने सोने में सुगन्ध की बात सुनी होगी। सोने में सुगन्ध केवल कहावतों में होती है। वास्तविक जीवन में सोने और सुगन्ध में मीलों का फासला है। पर सुषमा देवी ने यह सिद्ध कर दिया कि सोने में सुगन्ध भी हो सकती है।...... विशेषकर इनके संगीत के जादू की बहुत चर्चा हो रही है। सुना है भगवान ने इन्हें ऐसा कंठ दिया है कि एक बार कोकिल को भी मात खा जाना पड़े.......... हाथ कंगन को आरसी क्या? अब आप स्वयं देखे कि हमारे कथन में कितनी सत्यता है। आपकी ओर से और अपनी ओर से मैं सुषमा देवी से अनुरोध कर रहा हूँ कि इस अवसर पर वे हमें विद्यापति का एक गीत अपने सुमधुर कंठ से सुनाएँ।"[6]

यहाँ पर सहकारिता मंत्री के भाषण से और उसमें प्रयुक्त भाषा से उनका उच्च वर्गीय और उच्च वर्णीय होना सिद्ध होता है। राजनीतिज्ञ लोग जनता की नब्ज समझते हैं अतः उनके व्याख्यानों में लोकभाषा में प्रयुक्त कहावतों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। प्रसंग के अनुरूप व्याख्यान देने की महारत उनमें होती है।

उच्च-मध्य वर्ग के पात्रों में सागर चौधरी (नदी नहीं मुड़ती), मुहम्मद सत्तार, पं. देवीशरण त्रिपाठी (सूरज के आने तक), गीतिका (लक्ष्मण-रेखा), और मनीष (एक और अहल्या) आदि की गणना कर सकते हैं।सागर चौधरी कलकत्ता कॉलेज में संस्कृत के विभागाध्यक्ष हैं। उन्हें संस्कृत शास्त्रों का भी गहरा ज्ञान है और अपने क्षेत्र के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान हैं। एक स्थान पर अपनी आस्तिकता के सन्दर्भ में सुषमा से तर्क करते हुए वे कहते हैं - "सब कुछ सहज ही बता रहा हूँ मैं। तुम असहज हो, इसीलिए तुम्हें सब कुछ असहज लग रहा है। रामकृष्ण परमहंस को दुनिया पागल कहती थी, पर बोलो पागल वह थे या यह दुनिया पागल थी? सत्य की चमक चकाचौंध पैदा करती है, साधारण आँखें तिलमिला जाती हैं, बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। इसके लिए साधना और अटूट विश्वास की आवश्यकता है। इसलिए सत्य सबके समक्ष अपने को उद्घाटित भी नहीं कर सकता। जिसके सामने वह उद्घाटित होता है वह दूसरों से इसका वर्णन करने लगे तो वह क्षेपा से वामा (पागल) क्षेपा,

रामकृष्ण परमहंस से बौड़ाराम हो जाता है। मैं बार-बार कहता हूँ कि यह सब प्रोफेसर चौधरी की कमाई नहीं है, यह माँ मलेच्छमर्दिनी का प्रसाद है। बात इतनी सहज है, पर तुम्हारा अविश्वास ही उसे असहज बनाए जा रहा है।''[7] इस पर सुषमा प्रोफेसर चौधरी से पूछती है - ''यह कैसे? क्या माँ ने यह सब कुछ आपको छप्पर फाड़कर दिया?''[8] इसके उत्तर में सागर चौधरी कहते हैं- ''नहीं। वह ऐसा नहीं करतीं। यद्यपि कर भी सकती है। दुनिया का अणु-अणु नियमों से बंधा है। यहाँ यों ही कुछ नहीं होता। जगत् क्या, पूरे ब्रह्मांड में कार्य-कारण संबंध चलता है - 'काज़ एण्ड इफेक्ट रिलेशन'। मैंने केवल संस्कृत नहीं पढ़ रखी है। आधुनिक विज्ञान का भी अध्ययनं किया है। प्रकृति नियमों के अधीन है। बिना कुछ के यहाँ कुछ होता नहीं- देयर इज़ नथिंग लाइक समथिंग फोर नथिंग। हर क्रिया की ही प्रतिक्रिया होती है। क्रिया नहीं तो प्रतिक्रिया नहीं। नो रिएक्शन विदाउट एक्शन। तो बिना कारण कुछ नहीं होता। यह सब कुछ अनायास नहीं है।''[9]

यहाँ प्रोफेसर सागर चौधरी शैक्षिक जगत से जुड़े हुए व्यक्ति है। अपने विषय के ज्ञाता तथा शास्त्रज्ञ है। संस्कृत के अलावा अंग्रेजी पर भी उनका प्रभुत्व है। दर्शनशास्त्र से भी वे अभिज्ञ हैं। उनके कथन में तार्किकता और संगति है।ये सब बातें उपर्युक्त उदाहरण में जो भाषा प्रयुक्त हुई है उससे प्रमाणित होती है।

'सूरज के आने तक' के मुहम्मद सत्तार भारत सरकार में परियोजना पदाधिकारी के पद पर आसीन है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने संस्कृत में एम.ए. किया है। उनकी भाषा उनकी शिक्षा और पद के अनुरुप है। यथा ''राधा ने नौकरी छोड़ दी है। उसने अपना त्यागपत्र सीधे जिलापदाधिकारी को भेज दिया है। मुझे उसकी प्रतिलिपि दी है।......... मैंने उसे बहुत समझाया पर मानी नहीं......... कुछ गलतफहमी हो गई बाबा। मुझे इसका दुःख है। सब कुछ मेरे कारण हुआ।........ नहीं बाबा आपको इतना कुछ जानने के बाद मैं ऐसा क्यों सोचना? मैं आश्चर्य जाति-पाँति को लेकर नहीं कर रहा। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि आपको सब कुछ ज्ञात था और मुझे पता नहीं था। मुझे मालूम रहता तो मैं इसमें टांग अड़ाने की बात ही नहीं सोचता। मुझ से भारी गलती हो गई बाबा।''[10]

पं. देवीशरण शास्त्री दिल्ली में भारत सरकार की नौकरी में किसी ऊँचे पद से निवृत्त हुए हैं। उच्च अधिकारी होते हुए भी वे आस्तिक प्रकृति के है। एक स्थान पर नारायण नामक ग्रामीण व्यक्ति से बात करते हुए वे कहते हैं - ''बड़ी अच्छी बात है नारायण, पर अखबारों में पढ़ा है तुम्हारे गाँव में प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र खुल गया है। अब तो सही रुप में समझो कि अब क्या अन्धिविश्वास है या नहीं। आस्था पूजा को

अन्धविश्वास करार देने वाले नास्तिक और बेहूदे लोग ही हो सकते हैं, रूढियों और गलत मान्यताओं को बन्दरिया के मरे बच्चे की तरह कॉलेज से सटाया रखना भले अन्धविश्वास हो सकता है। .... फिर भगवान तो अन्धे विश्वाससे ही मिलता है नारायण।......... बाइबल वाले कहते है 'फेइथ इज़ ब्लाइन्ड्।' गीता कहती है 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' श्रद्धा भी तो अन्धी ही होती हैं।''[11] यहाँ पर शास्त्रीजी की जो भाषा है वह उनके पात्र के अनुरूप है। शास्त्रीजी एक सुपठित अधिकारी है। अतः उनकी भाषा में संस्कृत-अंग्रेजी के शब्द अनायास ही आ जाते हैं। संस्कृत के भक्ति-भावपूर्ण अनेक स्तोत्र उनको कंठस्थ हैं और वह सब उनकी भाषा में अनायास ही आता है।

'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास की गीतिका यों तो वनों के ठेकेदार विश्वास मुखर्जी की पुत्री है, और इस लिहाज़ से वह उच्च वर्ग में भी आ सकती है परन्तु बाद में पढ़-लिख कर व्याख्याता के पद पर कार्य करती है। अतः उसकी गणना हम उच्च मध्य वर्ग के अन्तर्गत कर सकते हैं। एक स्थान पर उपन्यास के नायक विश्वंभर से बात करते हुए वह कहती है- ''मैं कभी अत्यन्त महत्वाकांक्षिणी थी। दुनिया की किसी भी ऊँचाई पर अपने को आसीन करने का स्वप्न पाला करती थी। मैंने जॉन ऑफ आर्क की कहानी पढ़ी थी कि कैसे वह एक सामान्य कृषक बाला से विश्वविख्यात हो गई थी। मैं भी जॉन ऑफ आर्क बनना चाहती थी। पर मेरे पैर मध्य मार्ग में ही श्लथ हो आए। मैं अपने प्रगति-पथ पर अग्रसर नहीं हो सकी। यह मेरे वश की बात नहीं थी, यह समझने में मुझे बहुत विलंब नहीं लगा। अब मैं तुममें अपनी पूर्णता ढूँढ़ने को कृत संकल्प हूँ। इसके लिए मैं कोई भी उत्सर्ग, कोई भी त्याग करने को प्रस्तु हूँ। तुम्हें इसमें संदेह नहीं होना चाहिए क्योंकि उत्सर्ग का ही दूसरा नाम नारी है। अगर यह बात सही है कि हर सफल पुरुष के निर्माण में एक नारी का योगदान है तो मैं तुम्हारी प्रगति-रुपी अट्टालिका के कंगूरे को चमकाने के लिए नींव की ईंट बनने को प्रस्तुत हूँ - नींव की ईंट जिसकी कोई पहचान नहीं बच पाती, न शेष रह जाता है उसका कोई परिचय। मैं तुम्हें सचमुच शिखर-पुरुष के रुप में देखना चाहती हूँ विश्वंभर।''[12] यहाँ गीतिका द्वारा जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है उससे उसकी उच्च शिक्षा, संस्कार और शालीनता प्रकट होते हैं।

'एक और अहल्या' का नायक मनीष आई.ए.एस. ऑफिसर है और भारत सरकार में किसी उच्च पद पर कार्यरत है। वह एक आदर्शवादी युवक है और भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का प्रशंसक है। एक स्थान पर उपन्यास की नायिका पृथा से वह कहता है- ''हां, भारत वह भारत नहीं रहा जिसकी कल्पना तुम अपने

मन में बसाए बैठी हो। देहातों का भारत वही है। वही गरीब। घास-फूस और मिट्टी के वही घर। वही ढ़ोर-डांगर। गाँवों की वही धूल भरी सड़कें। पीने के पानी तक का घोर अभाव। और सब कुछ होते हुए भी जीवन-मूल्यों के प्रति वही प्रतिबद्धता। जरा-सी नैतिक-ह्रास की गंध मिलते ही मरने-मारने की वही पुरातन प्रवृत्ति। पर बड़े नगरों का भारत, वह भारत बहुत पहले नहीं रहा। जिनं लोगों ने ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और विदेशों के अन्य विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर भारत का भाग्य गढ़ने का जिम्मा लिया उनसे तुम और अपेक्षाएँ भी क्या कर सकती हो? उनको पिछड़ापन ना-पसन्द है और सभ्यता-संस्कृति के विकसित रूप का अर्थ उनके लिए विदेशों का अन्धानुकरण।''[13] यहाँ मनीष द्वारा जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह उसके विचारों और संस्कारों के अनुरुप है। उसकी भाषा से उसका चिन्तन प्रस्फुटित होता है। उपन्यास में अन्यत्र भी जहाँ-जहाँ विविध विषयों पर उसके आदर्शवादी विचार अभिव्यक्त हुए हैं वहाँ-वहाँ भाषा का प्रयोग उसके अनुरुप हुआ है।

डॉ.मिश्र के औपन्यासिक पात्रों में सुषमा (नदी नहीं मुड़ती), राधा (सूरज के आने तक), तथा पृथा, पृथा की माँ सावित्री, पृथा के पिता विश्वमोहन (एक और अहल्या) आदि को हम मध्यवर्ग के अन्तर्गत रख सकते हैं।

'नदी नहीं मुड़ती' की सुषमा के पिता केशव झा का निधन हो गया है। सुषमा की माँ अरुणा निर्धन अवस्था में न केवल उसे पाल-पोसकर बड़ा करती है बल्कि अनेक कष्टों को उठाते हुए उसे उच्च शिक्षा भी दिलाती है। सुषमा बी.ए में युनिवर्सिटी में फर्स्ट आती है। वह एक तेज तर्रार लड़की है। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर है। उसकी भाषा उसके शिक्षित प्रखर तेजस्वी व्यक्तित्व के अनुरुप है। यथा -
''नो मोर..... मेरे आदरणीय गुरुजनों ! आपके कहने से मैंने गा दिया। पर मुझे यह कतई पसन्द नहीं है। मंत्री महोदय ने मेरे रूप की भी प्रशंसा की और सोने में सुगंध की भी बात की। पता नहीं कब तक औरत के रुप और कंठ के बहाने उसे छला जाता रहेगा। मैं जानना चाहती हूँ कि क्या केवल पढ़ाई के क्षेत्र में मेरी उपलब्धि ही पर्याप्त नहीं है? यदि है तो मुझे भी मंत्री महोदय की तरह भाषण देने ही क्यों नहीं कहा गया। मुझे गाने को बाध्य किया गया और मेरे रुप के उल्टे-सीधे वर्णन हुए। क्या मंत्री महोदय इसलिए मंत्री हैं कि वे बड़े रूपवान हैं अथवा उनके कंठ में कोकिल कंठ का वास है? उनकी बुद्धि ने उन्हें मंत्री मंत्री बनाया है या उनके बांके-सलोने रूप ने? यदि पुरुष मात्र बुद्धि के बल पर आगे बढ़ सकता है तो औरत के लिए यह रूप और कंठ की बैसाखी क्यों चाहिए? आशा है आप आगे से किसी लड़की को उसकी बुद्धि के सम्मान में आयोजित समारोह में उसके अपने कंठ का भी करिश्मा

दिखाने को बाध्य नहीं करेंगे और उसकी रूप की प्रशंसा में व्यर्थ के पूल बना उसे, कांटो में नहीं घसीटेंगे। धन्यवाद।''[14]

'सूरज के आने तक' की राधा साक्षरता परियोजना में परियोजना पदाधिकारी मुहम्मद सत्तार की मातहती में कार्यरत है। वह एक सुक्षिशित महिला है। गाँव का एक युवक लालमोहर जो नूनूबाबा का शिष्य है राधा को दिलोजान से चाहने लगता है। गाँव में जब संघर्ष होता है, तब अपनी जान पर खेलकर वह राधा को बचा लेता है। यद्यपि उसकी अकादमिक शिक्षा अधिक नहीं थी, तथापि नूतूबाबा के सत्संग स्वाध्याय से उसने अनेक विषयों का ज्ञान अर्जित कर लिया था। अतः राधा भी उसे चाहने लगती है। दूसरी तरफ परियोजना पदाधिकारी मुहम्मद सत्तार भी राधा को मन ही मन चाहते थे। उन्हें जब ज्ञात होता है कि राधा गाँव के लालमोहर से विवाह करने जा रही है, तब उनमें जो वार्तालाप होता है उससे राधा के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। परियोजना पदाधिकारी राधा से कहते हैं - ''मैं फिर कह रहा हूँ राधा, यह सब कुछ तुम्हें शोभा नहीं देता। हम सरकारी कर्मचारी हैं। हम प्यार और शादी करने नहीं, सरकारी कार्य कलने चले हैं।''[15] इसके उत्तर में राधा जो कहती हैं, और उसके कथन में जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह उसके व्यक्तित्व के साथ पूर्णरूपेण मेलखाती है । यथा - ''और अगर मैं आपसे शादी कर लूं तो? तो वह ठीक रहेगा? और आप जो यह मुझसे फरमा रहे हैं प्यार? यह आपके लिए उचित है? और सुनिए सर प्यार, नौकरी-चाकरी आदि से बहुत ऊपर की चीज है। लोगों ने तो प्यार के लिए राज-गद्दी तक छोड़ी हैं, यह तो टटपुंजिया नौकरी ही है। और जहाँ तक जनता की सेवा का सवाल है, मेरी और लालमोहर की शादी से उसमें कोई बाधा नहीं आती। नौकरी, शादी के लिए मना नहीं करती। यह तो कोई न्याय नहीं हुआ कि आपसे शादी कर लू तो मैं सरकारी नियम के अनुकूल चल रही हूँ और लालमोहर से शादी कर मैं किसी नियम का उल्लंघन कर रही हूँ। मैं किसी के सामने कोई गलत उदाहरण भी नहीं रख रही। आप ही के शब्दों में अधिक पढ़ी लिखी और सम्भ्रान्त होकर भी मैं तथाकथित मूर्ख और देहाती को गले लगा रही हूँ। अगर यही त्याग भावना सभी में आ जाए, तो छेटे-बड़े और ऊंच-नीच का भेद रहे ही नहीं।''[16]

'एक और अहल्या' की सावित्री और विश्वमोहन भी मध्यवर्गीय पात्रों में आते हैं। वे पृथा के माता-पिता है। सावित्री ने अपनी एक बेटी जयश्री का विवाह श्रीधर नामक युवक से कर दिया है। उसी में उनके जी.पी.एफ और ग्रेच्यूटी के पैसे लग गए थे। अतः पृथा के विवाह का खर्च सावित्री अब उठाना नहीं चाह रही थी। फलतः पृथा का विवाह भी वह जयश्री के पति श्रीधर से ही कर देना चाहती थी। इस सन्दर्भ

में सावित्री और विश्वमोहन का निम्नलिखित वार्तालाप देखिए :

"यह कैसे सम्भव है?" वह बोले थे।

"क्यों नहीं सम्भव है? एक पुरुष की दो शादियाँ नहीं होतीं क्या?" मां अपनी हठधर्मिता का परिचय देते हुए बोली।

"नहीं होतीं। कम से कम अब नहीं होतीं।"

"क्यों?

"सरकार ने ऐसा कानून बना रखा है।" पिताने समझाया।

"गोली मारो ऐसे कानून को।" मां उखड़ी थी, "सरकार के किस कानून की ऐसी की तैसी नहीं हो जाती यहाँ? क्या तिलक-दहेज के विरुद्ध सरकार ने कानून नहीं बनाया?"

"बनाया।" पिताजी ने मुँह लटकाकर जवाब दिया।

"तब क्या?"

"तब यह कि हमें क्यों देना पड़ा जयश्री के लिए इतना कुछ? और क्यों देना पड़ रहा है हमारी तरह के असंख्य लोगों को अपना सब कुछ गँवाकर? गहने, कपड़े, आभूषण तो अलग, घर-द्वार तक बंधक रखकर अथवा बेच-बाचकर? क्यों आड़े नहीं आता कानून इस सब में?"[17]

उक्त संवाद में सावित्री और विश्वमोहन द्वारा जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह उनके पात्रों के अनुरूप है। विश्वमोहन एक मध्यवर्गीय दब्बू किस्म के व्यक्ति हैं और सावित्री अक्सर उन पर हावी हो जाती है। वह सरकारी कायदे-कानूनों की परवाह नहीं करती जिसे हम उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा में देख सकते हैं।

परन्तु कहीं-कहीं ऐसा ज्ञात होता है कि पात्रों की भाषा पर लेखक की भाषा हावी हो जाती है और तब ऐसा लगता है कि यह वह पात्र नहीं बल्कि स्वयं लेखक बोल रहा हो। ऐसे स्वाभाविक कथन को उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। उपर जो सन्दर्भ दिया है, उसी सन्दर्भ में आगे सावित्री का जो कथन है उसे यहाँ हम उद्धृत कर रहे हैं -

"और क्यों जल-जलकर मर रही है असंख्य नव-बधुएं-हजार-हजार घरों में, अथवा जलाई जा रही है?".......... "पिता-माता दहेज नहीं जुटा सके तो इसमें एक निर्दोष जान का क्या दोष? एक खिलती कली का? क्यों फूल बनने के पूर्व ही उसे सदा-सदा के लिए धूल-धूसरित होने को बाध्य होना पड़ता है? और उनमें सब

क्या साधारण रंग-रुप और नाक-नक्शे की ही होती हैं? चुनकर तो आती हैं वे सैकड़ो में से? सैकड़ों,हजारों फोटो देखे जाते हैं। फिर खुद लड़कियों की नुमाइश होती है और उन सबों में से कोई परी-सी दुलहन पसन्द की जाती है। पर क्यों पेट्रोल छिड़ककर सलाई दी जाती है ऐसी परियों को भी? इसीलिए तो कि दहेज की मांग को उसके माता-पिता अन्त-अन्त तक पूरा नहीं कर पाते और बकाये की वसूली होती है उनकी लड़की के प्राणों की आहूति चढ़ाकर ताकि लड़का फिर ब्याह के बाजार में खड़ा किया जा सके, उसकी बोली लगे और फिर कोई परी-सी दुलहन अपने साथ कुछ लेकर और बाद में कुछ और लाने के आश्वासन के साथ आ जाए?...... कानून, कानून और कानून? भाड़ में जाएँ तुम्हारे कानून? जीवनभर कानूनों से ही साबका पड़ता रहा तुम्हारा पर अब तक इतनी बात नहीं समझ पाए कि कानून सबके लिए समान नहीं होते। न वे सब पर समान रुप से लागू होते है? महिलाओं के कानूनों की तो और होती है ऐसी की तैसी? बना तो है कानून पिता की सम्पत्ति में पुत्री के भी हिस्सा का ! तो कितनों को मिल पाता है यह हक? कितने पिता प्रसन्नता से अपनी पुत्रियों को अथवा कितने भाई स्वेच्छा से अपनी बहनों को अपनी सम्पत्ति का हिस्सा दे पाते है? अगर ऐसा होता तो यह दहेज का दानव स्वयं ही आग में नहीं जल जाता? जब लड़की अपने हिस्से की सम्पत्ति ही लेती आती तो उसके और अधिक अपेक्षा किसे होती?''[18]

सावित्री एक मध्यवर्गीय महिला है। वह अधिक पढ़ी-लिखी भी नहीं है। अत: उपर्युक्त उद्धरण में जो भाषा सावित्री द्वारा प्रयुक्त हुई है वह यथार्थ की दृष्टि से अस्वाभाविक लगती है।

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में निम्न वर्ग के पात्रों में नारायण, महादेव, लालमोहर, रूपा (सूरज के आने तक) तथा मुहम्मद इस्माइल (लक्ष्मण-रेखा) आदि की गणना कर सकते हैं। डॉ. मिश्र का जो रचना संसार है उसमें निम्न वर्ग के पात्र कम मिलते हैं । जहाँ तक उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का सवाल है, वह भाषा भी अन्य वर्ग के पात्रों से अलग-सी नहीं जान पड़ती। 'सूरज के आने तक' का लालमोहर वैसे तो निम्न वर्ग का है परन्तु नूनू बाबा के सान्निध्य के कारण उसने स्वाध्याय से काफी कुछ पढ़ रखा है। वह परियोजना के अन्तर्गत कार्यरत राधा नामक पर्यवेक्षिका को प्रेम करने लगता है। वह राधा को एक पत्र लिखता है जिसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उदाहरण स्वरुप दी जा रही है - ''मेरी प्राण प्यारी राधा, मेरी प्राण वल्लभे ! मत समझना कि यह किसी पागल का प्रलाप है। मैं तुम्हारे सुघड़ स्वरुप पर न्योछावर हो चुका हूँ। मेरा मन मेरे हाथों में नहीं है। जैसे पूरे चाँद को देखकर सागर में उथल-

पुथल मच जाता है, उसी तरह तुम्हारे आनन की एक झलक पर ही मेरे मन का समुद्र हिलोरें लेने लगता है। अहा, क्या रूप दिया है विधाता ने तुम्हें क्या देह गढ़ी है तुम्हारी । मैं संस्कृत साहित्य का अध्येता रहा हूँ, मेरी प्राण-प्रिये । कल बाबा के नहीं रहने पर छान डाला उनका पूरा पुस्तकालय, तुम्हारी उपमा ढूंढने में पर कहाँ मिल रही थी वह मेरे लाख सिर पटकने पर भी। ठीक ही कहा था बाबा तुलसीदास ने - सब उपमा कवि रहे जुठारी। पर अहा, अन्त में मिल ही गई वे पक्तियाँ जिनकी मुझे खोज थी, जो तुम पर सटीक बैठती थी भला सौंदर्य पारखी कालिदास के सिवा और कौन गढ़ता ऐसी पंक्तियाँ।''[19] यहाँ लालमोहर द्वारा जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह संस्कृतनिष्ठ भाषा है। परन्तु इसके लिए लेखक ने स्पष्टीकरण भी दिया है कि वह निरन्तर स्वाध्याय द्वारा पढ़ता रहा है किन्तु एक मुहावरा दोष यहाँ पर आ गया है। लालमोहर लिखता है - ''कल बाबा के नहीं रहने पर छान डाला उनका पूरा पुस्तकालय।'' वस्तुतः नहीं रहने पर से किसी के निधन का बोध होता है। लाल मोहर का आशय यहाँ पर नूनू बाबा कहीं बाहर गए थे यह कहने का था किन्तु पोथी पण्डित लाल मोहर यह गलती कर बैठता है। वस्तुतः यह गलती लालमोहर की नहीं अपितु स्वयं लेखक की है। क्योंकि यह भाषा भी लालमोहर की कम लेखक की ही ज्यादा लगती है।

इसी उपन्यास की रूपा एक ग्रामीण महिला है। राधा गाँव में साक्षरता अभियान चला रही है। रुपा भी उन औरतों में है जिनको ये लोग साक्षर बनाना चाहती है। रुपा लम्बा-सा घूंघट निकालकर चलती है। उसकी भाषा ग्रामीण औरतों-सी भाषा है। राधा, कमला और रुपा के बीच जो वार्तालाप होता है उसमें रूपा की ग्रामीण भाषा का उदाहरण हमें मिलता है- यथा -

''रूपा है तो यह अपने रूप को छिपाकर क्यों चलती है? अन्धी कानी है क्या?''

''अन्धी-कानी होवे तुम, तुम्हारी सौत, मैं तो ठहरी अच्छी भली।'' यह कहते ही रुपा ने अपने मुख का घूंघट उतार फेंका।

''अच्छा तो यह बात है, तुम तो सचमुच बड़ी सुन्दर हो। बेकार ही इस चाँद को बादल में छिपा रखा है? क्यों करती हो पर्दा?

''लाज लगे है जी।''

''किस से लाज लगती है?''

''मुआ, इन मर्दों से जी, कैसे तो टुकुर-टुकुर ताकते हैं मेरे चेहरे को? कहीं

मालूम हो गया मरे मरद को कि पराई डीठ लगी है मुझे तो टुकड़े-टुकड़े ही कर देगा वह मेरे। फिर कौन मुँह दिखाऊंगी उसे मैं? पराई नजरो की जूठी बनकर जाऊंगी उसके पास?''

''बात तो बड़ी अच्छी कर रही हो रूपा। सचमुच जूठी होना ठीक नहीं। जूठी कोई चीज ठीक नहीं होती, पर किसी की नजर पड़ने से ही तुम जूठी कैसे हो जाओगी?''

''जूठी कैसे नहीं होऊंगी जी मेम साहब। सीता-सावित्री की धरती पर पैदा होकर कैसी-कैसी बातें करो हो तुम?''

''पर सीता तो बन-बन डोली थी, रूपा। सावित्री तो सत्यवान के कारण यमराज के पीछे-पीछे भागी थी।''

''......... भागी होगी जी। वह सब सतयुग,तरेता की बातें हैं। मुआ इस कलियुग में किसका धर्म बचता है? टुकुर-टुकुर ताकते हैं कलमुंहे। और फिर सीता को तो लछमन के समान सुलच्छन देवर मिला था, जिसकी नजरे पैरों को छोड़ सीता के सिर तक चढ़ी नहीं। मुआ, ाज के देवर तो फिल्मी गीत मारते हैं जी -- है अपना दिल तो आवारा......।''[20]

यहाँ पर रूपा की जो भाषा है वह उसके पात्र के अनुरूप है। उसकी भाषा में ग्राम्यता और स्त्रैणता का लहजा मिलता है। ग्रामीण औरतें प्रायः इस प्रकार की भाषा का उपयोग करती है। इस प्रकार रुपा की भाषा के रुप में हमें भाषा का एक भिन्न स्तर उपलब्ध होता है।

'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास का मुहम्मद इस्माइल नैनीताल की झील में नाव खेने का काम करता है। प्रेम और मुहब्बत के मारे जो लड़के-लड़कियाँ नैनी में छलांग लगाने आते हैं उनको बचाने का काम मुहम्मद इस्माइल का था। वह अधिक पढ़ा-लिखा नहीं है अतः साधारण-सी भाषा का प्रयोग करता है। मुस्लिम है इसलिए कहीं-कहीं उर्दू शब्दों की छांट मिल जाती है। नैनीताल में पर्यटक आते रहते हैं। अतः कभी कभार उसके मुँह से अंग्रेजी शब्द भी निकल पड़ते हैं। यहाँ उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा का एक उदाहरण दिया जा रहा है - ''तब लाल-लाल अंग्रेजी छोकड़ियाँ और उनके दीवाने अपनी कब्र खोजते थे। इस नैनी में, अब जैसा कहाँ हिंदुस्तानी लैला और मजनू.....। .... करते थे, अवश्य करते थे। मुहम्मद ने कहा, पर इस तरह नहीं कि बिना बात की बात ही में कूद पड़े नाव के नीचे। वे ऐसा करने के पहले खूब झगड़ते, बोलते, चिल्लाते थे अपनी गिट-पिट भाषा में।

मेरी मानो बाबू तो मैं तो इस सबका एक ही जवाब जानता हूँ।....... तबके छोकरे-छोकरियाँ अपने से झगड़ कर मरते थे और आजकल के बेचारे बच्चे-किशोर-किशोरियाँअपनी माँओं और बापों से लड़कर यहाँ मरने आते हैं। लो नहीं करोगे हमारा निकाह तो हम उस लोक में ही कर लैंगे उसे। साथ मरेंगे तो साथ ही रहेंगे बराबर। कितनी बेवकूफी भरी हैं ये बातें? हैं कि नहीं? आप ही बोलो। मैं तो पंद्रह की उम्र से ही नाव खेता रहा। साठ-पैंसठ वर्ष तक यही सब देखता-सुनता रहा। तुम लोग तो शायद नहीं कूदोगे बीच धार में?...... तुम लोग खुशनसीब लगते हो। शायद-तुम्हारे माँ-बापों नें टांग नहीं अड़ाई तुम्हारी पाक मुहब्बत में।......... नहीं, नहीं ऐसा नहीं होगा। मुहम्मद जल्दी-जल्दी बोलता है। अब की बार तो तुम आना तो वह मनाने..... क्या बोलते हैं.... हनी मूड़।''[21]

(ख) विभिन्न वर्ग के पात्र-व्यावसायिक दृष्टि से

जिस प्रकार विभिन्न वर्ग के लोगों की भाषा में भाषिक स्तर की दृष्टि से अन्तर पाया जाता है, ठीक उसी प्रकार पात्र विशेष का व्यवसाय भी उसकी भाषा को किसी-न-किसी प्रकार से प्रभावित करता है। यह तो सर्वविदित है कि कबीर जुलाहा थे, अतः उनकी साखियों और पदों में जुलाहों के कार्यों से सम्बन्धित अनेक शब्द उपलब्ध होते हैं। उनका वह प्रसिद्ध पद - 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' तो सीधे उनके व्यवसाय से ही जुड़ा हुआ है। अभिप्राय यह कि व्यक्ति का व्यवसाय उसकी भाषा को किसी न किसी रूप में प्रभावित करता है। डॉ. मिश्र के सामाजिक उपन्यासों में इस दृष्टि से देखे तो प्रोफेसर, पुजारी, सरकारी अधिकारी, पर्यावरण वादी, ठेकेदार, वकील, नेता आदि व्यवसाय से जुड़े हुए पात्र हमें मिलते हैं। यहाँ उनमें सेकुछेक के उदाहरणों द्वारा यह प्रतिपादित करने का उपक्रम है कि उनके व्यवसाय का प्रभाव उनके भाषागत संरचना पर कैसा और कितना पड़ा है।

'नदी नहीं मुड़ती' उपन्यास के डॉ. सागर चौधरी कलकत्ता युनिवर्सिटी के किसी कॉलेज में संस्कृत के विभागध्यक्ष है। यहाँ उनकी भाषा के सन्दर्भ में एक उद्धरण प्रस्तुत है-

''धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म-विहीनता कहाँ होता है? मैं यह कहाँ कहता हूँ कि हम यहाँ किसी धर्म विशेष को ही प्रश्रय दें? मेरा मतलब तो केवल इतना है कि जो जिस धर्म का है वह उसी धर्म के नियम और आचार का पालन कर अपना और अपने राष्ट्र का अभ्युदय कर सकता है। बल्कि सही अर्थों में धार्मिक वही है जिसमें संसार के सारे धर्मों के प्रति आदर और श्रद्धा है। हम तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में

विश्वास करने वाले लोग हैं। हमारी गीता तो कहती है कि हर हृदय के अन्दर ईश्वर का वास है- 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद देशे अर्जुन तिष्ठति। 'हम तो पशु-पक्षी के प्रति भी दया-भाव रखते हैं, फिर मुसलमान, ईसाई, सिख और बौद्ध होने से कोई हमारा दुश्मन कैसे हो गया? नहीं सुषमा मैं यह नहीं कह रहा कि हजारों वर्ष पुरानी मनुस्मृति और कौटिल्य शास्त्र के आधार पर हमारी शासन-व्यवस्था चलने लगे, पर मैं यह अवश्य मानता हूँ कि जब तक सदाचार और धार्मिक आस्था हमारे जीवन के अंग नहीं बनेंगे हमारा उद्धार नहीं है। आज जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है और आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में तो अस्त-व्यस्तता है उसका जवाब और कुछ नहीं है।''[22]

उपर्यक्त कथोपकथन में डॉ. सागर चौधरी द्वारा जिस भाषा का प्रयोग हुआ है उससे असंदिग्धतया यह प्रमाणित होता है कि वे संस्कृत के प्रोफेसर हैं। 'प्रश्रय', 'अभ्युदय', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'ईश्वर, सर्वभूतानां द्वददेशे अर्जुन तिष्ठति, 'मनस्मृति', कौटिल्य-शास्त्र' प्रभृति प्रयोगों से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है। यह तो केवल एक उदाहरण है उपन्यास में जहाँ-जहाँ डॉक्टर सागर चौधरी का कथोपकथन आया है वहाँ-वहाँ उनकी भाषा में संस्कृत प्रचुर शब्दावली का प्रयोग मिलता है जो उनकी प्रकृति और व्यवसाय से मेल खाता है।

'सूरज के आने तक' उपन्यास के नूनूबाबा बेनसागर गाँव के राधा-कृष्ण मन्दिर के पुजारी है।बाजीतपुर और बेनसागर गाँव के लोगों में प्रायः लड़ाई-झगड़े चलते रहते हैं। नूनूबाबा सच्चे अर्थों में एक धार्मिक व्यक्ति हैं।अतः गाँव के लोगों के इन लड़ाई-झगड़ों से वे बहुत व्यथित रहते हैं। पुजारी है, अतः गाँव के लोगों के इन लड़ाई-झगड़ों से वे बहुत व्यथित रहते हैं। पुजारी है, अतः अपनी व्यथा अपने इष्टदेव के समक्ष नहीं रखेंगे तो कहाँ रखेंगे? इस सन्दर्भ में उनका एक कथन यहाँ उद्धृत किया जा रहा हैं - ''कब तक चलतीं रहेगी नटवर तुम्हारी यह लीला? कब तक लड़ते रहेंगे लोग जाति और धर्म के नाम पर, तुम्हारी इस धरती पर? तुम्हीं ने तो कहा था प्रभु कि ब्राह्मण में और चंडाल में, गाय में और कुत्ते में बुद्धिमान कोई भेद नहीं करते-

''विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनी
शुनि चैव श्वपाके च पंडिता समदर्शिनः।''

कब आएगी लोगों में तुम्हारी यह समदृष्टि, प्रभु? कब प्यास खत्म होगी आदमी की, आदमी के खून की? कब तक मचते रहेंगे यहाँ मुर्शिदाबाद और बिहार

शरीफ तथा अलीगढ़ के महाभारत? कब तक लड़ते रहेंगे यहाँ बाजीतपुरों और बेनसागरों के बाशिंदे? कब तक खिंचती रहेंगी यहाँ द्रौपदियों की साडियाँ? सुबुद्धि दो प्रभु, सुबुद्धि दो अपनी सन्तान को।''[23]

यहाँ पर नूनूबाबा द्वारा प्रयुक्त भाषा से यह निश्चयतः प्रमाणित होता है कि वे राधा-कृष्ण मन्दिर के पुजारी हैं। दूसरे यह भी प्रमाणित होता है कि वे पोगा-पण्डित टाइप के पुजारी नहीं है बल्कि उनको हिन्दू धर्मशास्त्रों का भी गहरा ज्ञान है। अपने समय के प्रति भी एक प्रकार की सभानता और जागरुकता के भाव उनमें हमें मिलते हैं। अतः निश्चयतः कहा जा सकता है कि नूनूबाबा द्वारा प्रयुक्त भाषा उनके पात्र के बिलकुल अनुरूप है।

'एक और अहल्या का नायक मनीष एक आई.ए.एस. ऑफिसर है। एक स्थान पर उपन्यास की नायिका पृथा के साथ सरकार द्वारा नए-नए विश्वविद्यालय और महाविद्यालय खोलते जाने के मसले पर बात होती है। पृथा मनीष से कहती है कि यह सब लोगों के वॉट बटोरने के तरीके है। तब मनीष कहता है कि वॉट बटोरने के लिए ही सही पर यदि शिक्षा के ये संस्थान खुलते तो उसमें बुराई क्या है? तब पृथा कहती है कि तो क्या तुम भी इस बात से सहमत हो कि ये नए-नए विश्वविद्यालय और महाविद्यालय खुलते चलते जाए और शिक्षित बेकारों की सेना खड़ी होती चली जाए। उसके उत्तर में मनीष कहता है कि ये शिक्षा संस्थान खुलने चाहिए पर एक सुधार के साथ। यहाँ पर मनीष के जो शिक्षा सुधार विषयक विचार है और यहाँ मनीष द्वारा जिस भाषा का प्रयोग हुआ है वह भाषा एक चिंतनशील अधिकारी के उपयुक्त है । यथा-

''विश्वविद्यालय और महाविद्यालय तो खुले पर उनमें उन्हीं का नामांकन हो जिनकी उच्च शिक्षा में रुचि हो। साथ ही इन शिक्षा-संस्थानों के स्वरुप को परिवर्तित किया जाए। केवल पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर उन्हें व्यावहारिक ज्ञान दिया जाए...... जैसे सिखाना हो तो उन्हें हाथ के सामान बनाना भी सिखाओ, सूत कातना सिखाओ, पैटिंग सिखाओ, फोटोग्राफी सिखाओ। ऐसा करने से शिक्षा-संस्थानों से निकले लोग अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य बन सकेंगे। वे शिक्षित बेकारों की सेना के सदस्य नहीं बनेंगे। जानती हो बहुत सारे बाहरी देशों में यही होता है..... मेट्रिक, हायर सेकेण्डरी करते-करते लड़के अथवा किशोर अपनी कमाई में लग जाते हैं। अपने प्रशिक्षण के आधार पर कोई-न-कोई व्यवसाय आरम्भ कर देते हैं। जीवन के एक बड़े अंश को उपयोगी और आरामदेह बना लेते हैं। विश्वविद्यालय और महाविद्यालय में तो वे ही जाते हैं जिनकी रुचि वस्तुतः अध्ययन-अन्वेषण में हो।''[24]

'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास का नायक विश्वंभर एक पर्यावरणवादी पत्रकार है। उत्तरांचल में टेहरी बांध को लेकर महान पर्यावरणवादी सुन्दरलाल बहुगुणा एक सत्याग्रह चला रहे थे। वे अपनी बात को मनवाने के लिए अनशन पर उतरे हैं और उनके साथ उनके कई अन्यायी भी उस आमरण अनशन में उत्तरे हैं विश्वंभर भी वहाँ पहुँचता है और उन अनशनकारियों की महती सभा को सम्बोधित करता है। यथा - ''पर्यावरण की शुद्धि आज हमारी सबसे बड़ी समस्या है। प्रकृति इस धरती पर एक संतुलन, एक व्यवस्था कायम करने को व्यग्र है और हम हैं कि इस संतुलन, इस व्यवस्था को विनष्ट करने को कटिबद्ध। प्राकृतिक अवदानों को प्रदूषित कर मनुष्य अपने ही विनाश को निमंत्रण देता है। अधिकाधिक संपत्तिशाली होने के लोभ में मनुष्य ने प्रकृति के किसी अवदान-उपदान को अप्रदूषित नहीं छोड़ा। आज जल प्रदूषित है, वायु प्रदूषित है, आकाश प्रदूषित है और तो और भोजन प्रदूषित है, हवा प्रदूषित है। मनुष्य को लालच, घृणा, विद्वेष, क्रोध तथा अहंकार से आकंठ भरे प्रदूषित मन-मस्तिष्क ने किसी वस्तु को प्रदूषणरहित नहीं छोड़ा। भोजन, दवा यहाँ तक कि जल के प्रदूषण को भी हम बहुत हद तक सरकार की सहायता और उसके विधि-विधानों के आधार पर प्रदूषण मुक्त कर सकते हैं, पर वायु का प्रदूषण जो सर्वाधिक खतरनाक है, तब तक नियंत्रित नहीं हो सकता जब तक हम वनों के विनाश को नहीं रोकते और वृक्षारोपण का विश्वव्यापी आन्दोलन नहीं चलाते। इसमें सरकार से हम बहुत अपेक्षा नहीं कर सकते। उसकी अपनी विवशताएँ हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं को उसमें सामने आना पड़ेगा और विश्व को कई बहुगुणा पैदा करने पड़ेगे जो अपना सब कुछ न्योछावर कर 'पर्यावरण शुद्धि' को ही पूर्णतया समर्पित हो जाएँ। जीवन-दानियों की आवश्यकता है आज, जो सरकारी मनमानियों का सामना करने के लिए आमरण-अनशन की तरह के आत्मघाती शस्त्र को भी अपनाने को प्रस्तुत हों। मैं इस महान पुरुष के चरणों में अपना नमन प्रस्तु करता हूँ और इसका शिष्यत्व स्वीकार कर मैं भी इसके चरणों में तब तक खाली पेट बैठने को कृतसंकल्प होता हूँ जब तक सरकार इसकी नहीं सुनती।''[25]

यहाँ पर विश्वंभर एक पत्रकार है और साथ ही साथ वह पर्यावरणवादी भी है, अतः उपर्युक्त अभिभाषण में उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा उसके व्यवसाय के अनुरुप हैं।

इसी उपन्यास के बहुगुणाजी एक जाने-माने लोकसेवक एवं पर्यावरणवादी नेता है। यह एक वास्तविक पात्र है। उपन्यास के नायक विश्वंभर से उनकी जो बात होती है उससे उनका प्रकृति प्रेम और पर्यावरण प्रेम प्रकट होता है। यथा - ''मनुष्य वन में ही पैदा हुआ। वृक्षों के नीचे पला-बढ़ा। आरंभिक अवस्था में वन्य जीवों के मध्य

ही सह अस्तित्व की भावना से रहता-बढ़ता रहा। यह पृथक बात है कि इनमें से कुछ खूंखार जानवरों से वह भयभीत भी रहा और कुछ कमजोर जीवों का आखेट कर अपनी उदर-पूर्ति भी करता रहा। पर उसका मूल प्रदेश वन ही रहा। सभ्यता के क्रमिक विकास से वह वनों के बाहर अवश्य आ गया पर वन, पौंधें और वृक्ष अब भी उसको अपनी ओर दृढ़ता से खींचते हैं। वनों से उसका प्रेम स्वाभाविक और अकृत्रिम है। ये तो चंद स्वार्थी अर्थलोलुप लोग हैं जो वनों के विनाश पर तुले हैं। मानव जाति मूलतः वन-पेमी है, प्रकृति-प्रेमी।......... बात तो अब मानव के अस्तित्व पर ही मंड़राते खतरे को लेकर है। वनों के कटाव, जो इस बाँध के निर्माण के ब्याज ही हुआ है, से उत्पन्न विभीषिका को आप देख ही रहे हैं। सैंकडों की जाने तो उस भूकंप में जा ही चुकी हैं, सहस्त्रों बे-घर-बार हो ही गए हैं पर यह तो यहाँ की बात है - पहाडों-जंगलों की। हमारे नगर की वायु जो सड़क-वाहनों, जेट-विमानों और फैक्ट्रियों की चिमनियों से निकलते धुएँ के कारण निरंतर प्रदूषित हो रही है, नगरवासियों के अस्तित्व के लिए ही एक दिन घातक सिद्ध होने वाली है।........... अंग्रेज बेवकूफ नहीं थे जिन्होंने अपनी राजधानी नई दिल्ली को पेड़ो से पाट दिया। अगर आज वे पेड़ नहीं होते तो आज राजधानी की हजारों बसों, ऑटो-स्कूटरों और कारों से निस्सृत धूम्र दिल्लीवासियों पर कहर ढा देता। ये तो वृक्ष ही हैं जो नीलकंठ बन सब कुछ पी जाते हैं।''[26]

यहाँ पर बहुगुणा जी की जो भाषा है वह उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। उसमें उनका प्रकृति प्रेम और पर्यावरण प्रेम तो प्रकट होता ही है मानव जाति के भविष्य के प्रति उनकी चिन्ता भी प्रकट होती है। उन्होंने वृक्ष के नीलकंठ होने की बात कही है, उस सन्दर्भ में मुझे मेरे पूर्व विभागाध्यक्ष प्रोफेसर पारुकांत देसाई के निम्नलिखित दोहे का स्मरण हो रहा है-

''तरु मरु को मारता, तरु मरण से त्राण।
तरु तो सचमुच शिव है, विष पी देते प्राण।''[27]

'नदी नहीं मुड़ती' उपन्यास का विपिन उपन्यास की नायिका सुषमा का फुफेरा भाई है। नीरज ने हाल ही में बी.एल. (Bachelor of Law) की परीक्षा पास की है। और वह विपिन नामक घनिष्ठ वकील के जूनियर के रुप में काम कर रहा है। जब सुषमा बी.ए. में विश्वविद्यालय में प्रथम आती है, तब उसके उपलक्ष्य में नीरज, विपिन से एक पार्टी देने के लिए कहता है। नीरज यह भी कहता है कि इस पार्टी से विपिन को भी लाभ होगा। इस सन्दर्भ में नीरज और विपिन के बीच में जो

वार्तालाप होता है वह इस प्रकार है-

"लाभ इस तरह कि इसमें कई लोग आएँगे, उनसे तुम्हारा परिचय गाढ़ा होगा। लोग-बाग में इस पार्टी की दो-चार दिनों तक चर्चा होगी। अगर कुछ विशेष प्रभावशाली लोगों को बुलाओ जैसे जिला और सैशन जज को, स्थानीय नेताओं एम.एल.ए. और एम.पी.को, तो तुम्हारा प्रभाव बढ़ेगा। तुम्हारी वकालात और चल निकलेगी। वकील को और चाहिए क्या? प्रचार। क्यों?

"बात तो तुम ठीक कह रहे हो।" विपिन ने हामी भरी।

"बात तो ठीक ही है। आम के आम और गुठलियों के दाम। पार्टी तो मात्र बहाना है।"

"तो हो जाए तैयारी। तुम तो जानते ही हो मैं एक व्यस्त वकील हूँ। अगर पार्टी की तैयारी में ही लग जाऊं तो लेने के देने पड़ जाएं। आमदनी भी दो-चार रोज मारी जाए और ऊपर से पार्टी का खर्च............।"

"ठीक है, ठीक है, नीरज ने बीच में ही टोका, मैं सब तैयार कर लूंगा। तुम निपटते रहो अपने मुवक्किलों से। आमदनी पर क्यों प्रभाव पड़े तुम्हारी?"[28]

उपर्युक्त वार्तालाप दो वकीलों के बीच का वार्तालाप है, यह उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा से साफ झलक रहा है। वकील लोग समाज में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए किन-किन प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करते हैं यह भी उनकी भाषा से प्रकट हुआ है। 'मुवक्किल' शब्द के प्रयोग से भी ये बिलकुल स्पष्ट हुआ है।

'सूरज के आने तक' उपन्यास की कमला प्रौढ़ शिक्षा योजना में महिला सुपरवाईज़र हैं। महिलाओं के प्रशिक्षण का प्रभार कमला और राधा पर है। राधा कमला से सिनियर है। कमला ने बी.ए. हिन्दी आनर्स के साथ किया था। संगीत-साहित्य में भी उसकी रुचि है। वह बंगला, हिन्दी, मैथिली और भोजपुरी के गीत गा सकती है। यहाँ पर राधा और कमला केबीच जो संवाद चलता है उससे उन दोनों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है ।-

"कहो कमला, क्या हाल है?" एक कुर्सी की ओर इशारा करते हुए राधा ने कमला से पूछा।

"ठीक हूँ दीदी।"

"कैसा लग रहा है, तुम्हें यहाँ? मन तो नहीं उचटता न?"

"मन कैसे उचटेगा दीदी, वह तो जैसे यहाँ पूरी तरह रच बस गया है। कितना सुन्दर प्राकृतिक परिवेश है यहाँ का? एक तरफ आसमान को छूने का प्रयास

करती यह पहाड़ी, दूसरी तरफ कल-कल प्रवाहित यह काव नदी, बगल में झरता यह सुन्दर झरना, उस पर यहाँ के इतने अच्छे उदार लोग। क्या कुछ नहीं है यहाँ को बांध लेने को?''

''तुम तो अच्छी-खासी कविता कर लेती हो कमला?''

''कविता क्या करुंगी दीदी, पर हां तुम्हारी तरह प्राचीन इतिहास तो नहीं पढ़ा है मैंने कि खंडहरों की प्रतिध्वनियों पर कान लगाऊंगी। बी.ए. में हिन्दी में आनर्स ले रखा है मैंने।''

''अच्छा सुनाओ कोई कविता, आज तो छुट्टी का दिन है, कुछ मनोरंजन हो जाए। नूनूबाबा कहते हैं, ''काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।''

''कौन-सी कविता सुनोगी दीदी, बंगला की, हिन्दी की, मैथिली या भोजपुरी की?''[29]

(ग) डॉ. मिश्र के ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्र - भाषा के सन्दर्भ में

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'पहला सूरज', 'पीतांबरा', 'देख कबीरा रोया', 'का के लागूं पांव', 'गोबिन्दगाथा' तथा 'शान्तिदूत' आदि हैं जो क्रमशः छत्रपति शिवाजी, मीरा बाई, कबीर, गुरु तेगबहादुर गुरु, गोबिन्दसिंह तथा महात्मा गाँधी के जीवन पर आधारित है। यहाँ कुछेक पात्रों की चर्चा उनकी भाषा के सन्दर्भ में करने का उपक्रम है।

'पहला सूरज' उपन्यास में शिवाजी के पितामह मालोजी और फादर रेवरेंड स्मिथ के बीच जो वार्तालाप हुआ है उसमें फादर स्मिथ की भाषा को हम निम्नलिखित परिच्छेद में देख सकते हैं:-

''मैं कुछ नहीं हूँ, मालो साहब ! मैं स्मॉल आदमी हूं। छोटा-सा प्रीस्ट। क्राइस्ट का सेवक। तुम पहुँचा हुआ सेंट है। मैं सुनता था माउन्टेन का गोड क्या बोलते हैं लोर्ड शिवा, तुम्हें बहुत मानता है। आज देख लिया।.......... मैं छोटा आदमी है, मिस्टर मालो ! पर यह इंडिया बहुत बड़ा है, जिसमें तुम्हारी तरह का सेंट बसता है। मैं अपने और कन्ट्रीमेन मेरा मतलब है देश वालों के बारे में नहीं कह सकता, पर मैं तुम्हारे देश के साथ धोखा नहीं कर सकता। मैं मर्चेंट नहीं मिस्टर मालो, मैं पुजारी हूँ, प्रीस्ट।.......... तुम्हारा धर्म खुद ग्रेट है। उसमें लोर्ड शिवा है, दुर्गा और हनुमान है - मन्की गॉड। मैं अपना धर्म तुम पर क्यों इम्पोज करेगा? नहीं करेगा।हम केवल सेवा करेगा। अच्छा, अब चलता है। नमस्कार।''[30]

फादर रेवरेंड स्मिथ यहाँ एक ईसाई पादरी है। वह अत्यन्त समझदार, नम्र और उदार विचारों वाले व्यक्ति है। उनकी भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का आना स्वाभाविक ही कहा जाएगा। उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का लहजा भी ईसाई लोगों का हैं। ईसाई लोग इसी प्रकार की हिन्दी बोलते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि यहाँ पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है।

'पहला सूरज' उपन्यास में ही एक स्थान पर माता जीजा बाई और शिवाजी के बीच जो संवाद है, जिसमें मात जीजा बाई अपने पुत्र शिवाजी से तीन वचन भरवाती हैं जो इस प्रकार है:-

''हां बेटा माँ के आशीर्वाद और भवानी की अनुकम्पा में बड़ी शक्ति है। एक दिन हमारे सपने साकार होकर रहेंगे। नहीं जाना मैंने तुम्हारे पिता का बहुत सुख। पर जो तुम्हारे पिता नहीं बन पाये, वह मैं तुझे बनाकर रहूँगी बेटा। शर्त यही है कि मैं कहूं तुम वैसा ही करो।''

''मैं तुम्हारे चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ माँ, 'शिवा ने माँ के दोनों पैर पकड़कर कहा, ''तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध शिवा कुछ नहीं करेगा। तुम मेरे लिए माँ ही नहीं साक्षात् भवानी हो - माँ तुलजा। तुम्हारा आदेश मेरे लिए भवानी का ही आदेश होगा। तुम जननी और जगज्ञननी दोनों हो माँ।''

''ठीक है बेटा। तो आज ही तुम मुझे कुछ वचन दो।'' जीजा गंभीर होकर बोली।

''बोलो माँ'' शिवा सामने ही जमीन पर पालथी लगा बैठ गया।

''पहला वचन यह दो कि आलस्य से तुम्हारा दूर का भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। जो काम आज करना है, उसे अभी करोगे।''

''दिया।''

''दूसरा वचन यह कि युद्ध को ही अपना धर्म और रण-भूमि को ही अपना घर-आंगन समझोगे। घोओड़े की पीठ ही तुम्हारी शय्या और तलवार ही तुम्हारी संगिनी होगी।''

''ठीक है मां।''

''तीसरा वचन यह कि दुनिया की सारी माँ-बहनों को अपनी ही माँ-बहनें समझोगे चाहे वह मित्रों की हो या दुश्मनों की, हिन्दुओं की या यवनों की।'' जीजा ने गम्भीरता से कहा।

''यह वचन भी दिया मैंने। मैं ही क्या मेरे सभी मातहत अपनी पत्नियों को

छोड़ संसार की सारी औरतों में जीजा औरतुलजा का प्रतिरुप देखेंगे। जो ऐसा नहीं करेगा, उसे इसका फल मिलेगा माँ।''[31]

उपर्युक्त संवाद में प्रयुक्त भाषा से माता (जीजा बाई) तथा शिवाजी के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

'पीताम्बर' डॉ. मिश्र का मीराबाई पर आद्धृत उपन्यास है। यद्यपि सम्पूर्ण उपन्यास मीराबाई के अनेक कथनों से भरा हुआ है, तथापि यहाँ उनकी भाषा को लक्षित करने हेतु एक उदाहरण प्रस्तुत है। उपन्यास में एक स्थान पर मीरा बाई के सम्मुख विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के अनुयायी अपने-अपने सम्प्रदाय के आराध्य देवी-देवताओं को लेकर झगड़ते हैं,उस समय मीराबाई उनको यह प्रेरक उद्बोधन देती है। यथा- ''कोई काली का भक्त है तो कोई शिव का। शिव में भी कोई काशी-विश्वनाथ का उपासक है तो कोई भगवान एकलिंग का। कोई रामोपासक है तो कोई श्रीकृष्णोपासक। कोई निराकार पर न्योछावर है तो कोई साकार को ही सर्वस्व समझता है।....... सत्य एक है। टुकडों में बांटने से वह नहीं बंट सकता।........... जो शिव है वही राम है, चाहे वह रामानुजाचार्य का हो, या गोस्वामी तुलसीदास का। और जो राम है वही कृष्ण है। और यही कृष्ण और राम बुद्ध भी हैं और महावीर भी। केवल दृष्टि दोष है जिसका आखेट बने हम आपस में लड़ते कटते रहे हैं। यह सही है कि मैं स्वयं श्रीकृष्णोपासिका हूँ। पर मेरे पदों में भी राम आए हैं। उस परम तत्व की उपासना जिस किसी रूप में की जाय वही श्रेष्ठ और स्तुत्य है। विद्वेष और ईर्ष्या की भावनाएँ व्यर्थ हैं।....... चमत्कार आदि की बातें व्यर्थ हैं। कोई बौद्ध तांत्रिक अथवा गोरखपंथी अपने तंत्र-मंत्र अथवा किलों पर स्थापित तांत्रिक यंत्रों के माध्यम से शत्रु के आक्रमण से उन्हें बचा नहीं सकता। अगर यही होता तो आज आर्यावर्त का अधिकांश भू-भाग आक्रामकों के पैरों के नीचे नहीं पिसता रहता।.......... आज समय मनों के जोड़ने का है। तोड़ने का नहीं। श्रीकृष्ण ने अपने बांसुरी-निनाद से मनुष्य तो मनुष्य पशु-पक्षियों के मन को भी विजित किया था। इसीलिए मैं कृष्णोपासिका हूँ, श्रीकृष्णदीवानी भी लोग कहते हैं मुझे। पर आप मेरी बात छोड़िए। सही है कि श्रीकृष्ण अधुनातन अवतार हैं। उनकी बांसुरी की मधुर ध्वनि अब भी वृन्दावन की वीथियों में ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रही है।''[32]

मीराबाई का उपर्युक्त वक्तव्य उनके चरित्र के अनुरूप है। उसमें प्रयुक्त भाषा भी पात्रानुकूल है। इसे पढ़कर बिना सन्दर्भ के भी पाठक भांप सकता है कि यह कथन मीराबाई का ही हो सकता है।

'देखु कबीरा रोया' निर्गुण सम्प्रदाय के संत कवि कबीरदास के जीवन पर आधारित उपन्यास है। जैसा कि ऊपर कहा है, प्रस्तुत उपन्यास में भी कबीरदास के कई दोहें, पद, सबद और वक्तव्य आते हैं, किन्तु यहाँ पर उदाहरण स्वरुप उनका एक वक्तव्य दिया जा रहा है। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि अपनी तटस्थ विचारधारा के कारण कबीर तत्कालीन मुसलमान बादशाह सिकंदर लोदी के कोप का भाजन हुए थे। सिकंदर लोदी कोतवाल को उनकी जबान खींच लेने का हुक्म देता है। कोतवाल हुक्म तालीमी के लिए कबीर का मुँह खोलता है, तो क्या देखता है कि उसमें जबान ही नहीं है। कोतवाल सिकंदर लोदी को कहता है कि हुजूर उसको तो जीभा ही नहीं है। वह कहता है कि यदि एतबार न होता हो तो वह खुद ही देख ले। इस पर सिकंदर उसे डांटते हुए कहता है कि हरामी ! क्या मैं इस काफिर के मुँह में अपना हाथ डालूं? इस पाक हाथों को नापाक करुं? इसके उत्तर में कबीरदास सिकंदर लोदी को कहते हैं - "ठीक कहा तुमने सिकंदर, तुम्हारे हाथ जरुर पाक है क्योंकि ये हाथ न जाने कितने बेगुनाहों के लहू से रंगे हैं और मेरा मुंह जरुर नापाक है क्यों इससे अल्लाहताला का एक नाम 'राम' निकला करता है। पर तुम्हारे पास उपाय भी क्या है सिवा मेरे नापाक मुंह में अपना हाथ डालने के अलावा, अगर तुम्हें अपने ही कोतवाल की बात पर विश्वास नहीं? और तुम मुझे बार-बार काफिर क्यों कहे जा रहे हो, तुम्हें पता है कि न मैं मस्जिद के अनदेखे खुदा पर विश्वास करता हूं, न मन्दिर के अंदर शोभती पत्थर-मूर्तियों पर ही? खैर, तुम जो चाहे कर लो पर अपने कोतवाल की जीभ काटने पर नहीं उतरो। खुद तसल्ली कर लो इस संबंध में जो वह कह रहा है।"[33]

उपर्युक्त उदाहरण में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है उससे कबीरदास के चरित्र पर तो प्रकाश पड़ता ही है, किन्तु सिकंदर लोदी का चरित्र भी उससे उद्घाटित होता है।

'का के लागूं पांव' सिक्खों के नौवें गुरु गुरु तेगबहादुर के जीवन पर आधारित उपन्यास है। वे सिक्ख धर्म के प्रचार हेतु ब्रह्मपुत्र के पदेश में गए थे वहाँ वैष्णव धमाचार्यों से धर्म को लेकर उनकी चर्चा होती है। उस समय गुरु तेगबहादुर वैष्णव धर्म में वर्णव्यवस्था, जाति-पांति, ऊँच-नीच आदि का जो भेद है उसकी भर्त्सना करते हैं। एक स्थान पर वैष्णव धर्माचार्य से वह कहते हैं - "मैं आपके सबसे महान् धार्मिक ग्रन्थ की बात कर रहा था। उसमें निहित समानता की, जिसे हमने निर्भीक होकर अपना लिया है, और आपने कभी ध्यान नहीं दिया। सदा अपने भगवान और अपने को - उनके तथाकथित भक्तों, बुरा नहीं मानिएगा, माला-चन्दनधारियों को सबसे अलग-अलग, सबसे पवित्र और पुनीत मानते रहे। अन्य को भगवान को छूने

का भी अधिकार नहीं। उनके लिए मंदिर-प्रवेश तक वर्जित है। कुछ को तो जैसे आपने आदमी तक नहीं माना। उनके शरीर तो शरीर, उनकी छाया से भी आपको छूत लगती रही। उन्हें 'अन्त्यज' कहकर गाँव-नगर के अंतिम छोर पर रहने को बाध्य किया। उन्हें आपकी नगर-बस्ती में प्रवेश करना हो तो घंटी बजाते आना होता है जिससे आप सतर्क हो जाएं और उसकी मनहूस छाया से बच सके। ऐसा व्यवहार तो पशु के साथ भी नहीं किया जाता। आप मनुष्य से इस तरह घृणा करते हैं और आपका जगद्‌गुरु कृष्ण कहता है कि सबके हृदय में ईश्वर का ही वास है - ईश्वरः सर्वभूतानां हृददेशेऽर्जुन तिष्ठति।...... कैसे है आप कि यह भी नहीं सोचते कि मनुष्य का अपमान कर आप भगवान का ही अपमान कर रहे हैं? आप....''[34]

ऊपर जो वक्तव्य दिया गया है उसमें गुरु तेगबहादुर के विचार व्यक्त हुए हैं। वे सिक्ख धर्म के गुरु है और सिक्ख धर्म में धार्मिक दृष्टि में बराबरी का सिद्धान्त चलता है। सिक्ख धर्म संगत-पंगत का पक्षघर है। वे जाति-पांति और ऊँच-नीच के विरोधी होते हैं । यहाँ वैष्णव धर्म में धर्म को लेकर उनके आचार्यों में मनुष्य और मनुष्य के बीच जो दीवारे खड़ी की है उसका वे विरोध करते हैं। उनकी बात को काटने के लिए वे स्वयं कृष्ण का ही उदाहरण देते हैं। श्रीकृष्ण ने गीता में समानता का सन्देश दिया है। इस प्रकार गुरु तेगबहादुर उनके ही धर्मग्रन्थों का उदाहरण देकर उनको निरुत्तर कर देते हैं। प्रस्तुत वक्तव्य में उनकी तार्किकता, विद्वता तथा धर्म-विषयक उनकी गहरी सूझ-बुझ प्रकट होती हैं और इस प्रकार उनका यह वक्तव्य उनके चरित्र को उद्‌घाटित करता है।

डॉ. मिश्र का 'गोबिन्द गाथा' उपन्यास गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन पर आधारित है। गुरु गोबिन्दसिंह ने सिक्ख धर्म में खालसा पंथ को चलाया था। उससे सिक्ख धर्म पूरी तरह से वीर धर्म हो गया। उन्होंने पहले 'पंचपियारो' को अमृत छकाया और उसके बाद उन 'पंचपियारों' ने गुरु को अमृत छकाया। उसके पश्चात् तो एक सुदीर्घ सिलसिला बन गया हजारों लोग अमृत छककर उनके अनुयायी होने लगे। गुरु भी अमृत छककर गोविन्दराय से गोबिन्दसिंह हो गए। उन्होंने क्रांति की एक नई लहर अपने अनुयायियों में पैदा कर दी। जब प्रायः बीस हजार लोगों ने अमृत छक लिया तब गुरु उनको सम्बोधित करते हैं। वहाँ से एक परिच्छेद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है- ''मुझे प्रसन्नता है कि आज मेरे सामने बीस हजार सामान्य व्यक्ति नहीं बल्कि बीस हजार सिंह बैठे हैं। मैं जानता हूं ये बीस हजार सिंह मात्र कहने भर को सिंह अथवा शेर नहीं है। एक-एक सिंह में इतना साहस भरा है कि वह कई-कई शत्रुओं का अकेले ही शिकार कर सकता है। मैंने चिड़ियों से बाजों को

मरवाने की प्रतिज्ञा की थी। मुगलों और पहाड़ी राजाओं के प्रशिक्षित और मुस्टंड सैनिकों के सामने हमारे सिक्ख बाजों के सामने चिड़ियों से अधिक क्या थे पर अमृत छकने और खालसा पंथ के अनुयायी बनने के पश्चात् इनके अंदर साहस का इतना संचार हो चुका है कि तथाकथित कई-कई बाजों के पंख एक ही सिक्ख नोचने को पर्याप्त है। वीरता शरीर के गठन में नहीं होती न उसकी लंबाई, चौड़ाई और मुटाई में। वीरता बसती है आत्मविश्वास में, उत्साह और साहस में। अमृत छकाने के बहाने ही सब कुछ आप में भरा गया है। इनके सहारे आप बड़े-से-बड़े शत्रु का भी सामना करते जाएंगे। अब तो आनेवाले दिन ही बताएंगे कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ इसमें कितना सत्य है कि चिड़ियों और बाजों की लड़ाइयों में किस तरह बाज पर बाज लोहू-लूहान हो मैदाने-जंग में दम तोड़ते हैं अथवा भाग खड़े होते हैं। यह अमृत जो आपने छका है वह साधारण नहीं है। यह कीमिया गीरी है, कीमियागीरी। जिस तरह कीमियागीरी से साधारण धातु को भी सोना बना दिया जाता है, उसी तरह इस अद्‌भुत अमृत ने आपको सामान्य मानव से असामान्य बना दिया है। आपके शरीर को इस्पाती और आपके मन को फौलादी। आपके रक्त में इतने साहस, शौर्य और बलिदान का ज्वार जगा दिया है। यह सब कुछ अकाल पुरुष की इच्छा और उसी की कृपा से घटा है। इस संसार में कुछ भी यों ही नहीं घटता। यहाँ सब कुछ पूर्व नियोजित है। अकाल पुरुष की इच्छा के बिना यहाँ पत्ता भी नहीं डोलता तो इतनी बड़ी ऐतिहासिक घटना बिना उसकी अनुकंपा से कैसे घटती?[35]

यद्यपि यहाँ जो वक्तव्य दिया गया है उसमें गुरु गोबिन्दसिंह ने खालसा पंथ के सभी नियमों की चर्चा की है, तथापि यहाँ जितना अंश दिया गया है उससे गुरु गोविन्दसिंह की वीरता और शौर्य प्रकट होता है। उन्होंने छोटी कही जानेवाली जातियों में शौर्य और वीरता का एक विद्युत प्रवाह सा प्रवाहित कर दिया था। उन्होंने ऐसे लोगों को तैयार किया कि जो अकेले कई-कई शत्रुओं का सामना करे। गोबिन्दसिंह उक्त कथन उनके चरित्र को भली भांति उकेरता है। अत एव लेखक ने उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है जो उनके चरित्र के बिलकुल अनुकूल हो।

डॉ. भगवतीशरण मिश्र द्वारा प्रणीत 'शांतिदूत' उपन्यास महात्मा गाँधी के जीवन कवन पर आधारित उपन्यास है। उसमें निकट अतीत का आलेखन होने के कारण उसको हमने ऐतिहासिक उपन्यासों के अंतर्गत रखा है। कोई चाहे तो इसे राजनीतिक उपन्यासों की कोटि में भी रख सकता है। किन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय उपन्यास में वर्णित पात्रों की भाषा का परीक्षण है। उपन्यास के प्रारंभ में ही मोहनदास करमचंद गाँधी और एक अंग्रेज यात्री का प्रसंग आता है। अफ्रीका के

नेटाल प्रदेश की राजधानी मेरित्सबर्ग में यह घटना हुई थी। मोहनदास करमचंद गांधी जो अफ्रीका में वकालात करने के लिए आए थे, उनको कुछ ही दिन हुए थे और वहाँ की परिस्थितियों से वे पूरी तरह से वाकिफ नहीं थे। कायदा तो यह है कि जो भी व्यक्ति फर्स्ट क्लास का टिकट खरीदता है वह उसमें यात्रा कर सकता है, परन्तु वास्तविक स्थिति यह थी कि अफ्री का में अंग्रेजों का राज था और दूसरा कोई भी गैर-अंग्रेज व्यक्ति, जिसे वे लोग ब्लैक कहते थे, फर्स्ट क्लास के डिब्बे में यात्रा नहीं कर सकता था। इस तथ्य से अपरिचित गाँधी फस्ट्र क्लास का टिकट लेकर फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठ जाते हैं। वहाँ उनका सामना एक अंग्रेज यात्री से होता है, जो बहुत ही बुरा व्यवहार उनके साथ करता है। जातिगत अपमान और अन्याय क्या होता है, उसका पहला सबक गाँधी को यहाँ मिलता है। यहाँ उनके बीच हुए वार्तालाप को प्रस्तुत किया जा रहा है-

"तुम इस डिब्बे से अभी उतर जाओ इसी क्षण। गेट आउट।" वह एक गोरा अंग्रेज था जो काले गाँधी पर किसी बम की तरही फटा था।

"क्यों?" गाँधी ने निर्भीक पूछा था।

"क्योंकि यह फर्स्ट क्लास है।" गोरा उखड़ा था।

"मेरा टिकट भी फर्स्ट क्लास का ही है।" गांधीने पॉकेट से टिकट निकाल कर अपनी हथेली पर रख लिया था।

"सो व्हाट (इससे क्या?) तुम काला 'कुली' इसमें सफल नहीं कर सकता। यहाँ केवल गोरे बैठते हैं।"

"यह न तो इस डिब्बे पर लिखा है न इस टिकट पर। मैंने इस टिकट का पैसा दिया है, मैं इसी डिब्बे में चलूंगा।" गांधी अड़ गए।

"मैं किसी काले के साथ नहीं चल सकता।" गोरा कड़का

"देन यू गेट डाउन (तब आप उतर जाइए।)" गाँधी अड़िग बोले।

"व्हाट? व्हाट डू यू से, यू ब्लैक बास्टर्ड? (क्या? क्या कह रहे हो तुम काले कमीने?)"

गाँधी को गाली किसी बन्दूक की गोली-सी ही लगी पर वह चुप रहे। अपनी सीट पर जमे रहे।

"मैं कहता हूँ मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकता। यू गेट डाउन (तुम उतरो)"

"नहीं चल सकता तो तुम शौक से उतर जाओ। मैं क्यों उतरुं? व्हाई शुड आई?" गाँधी ने जवाब दिया।

"आई विल सी यू (मैं तुम्हें देख लूंगा)॥" यह कहकर वह गोरा तमतमाया हुआ डिब्बे के बाहर उतरा। क्रोध से उसका गौरवर्णी चेहरा तांबे-सा तप्त हो आया था।"[36]

उपर्युक्त कथोपकथन की भाषा से मोहनदास करमचंद गाँधी जो बाद में महात्मा गाँधी के नाम से प्रसिद्ध हुए और वह अंग्रेज यात्री दोनों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। गाँधीजी की भाषा से उनकी न्यायप्रियता, सत्य के प्रति निष्ठा, न्याय और सत्य के खातिर अपनी बात पर डटे रहने की उनकी प्रवृत्ति तथा उनकी निर्भीकता के दर्शन होते हैं। गोरे यात्री को केवल अपनी जाति और गौर वर्ण पर अभिमान है। शिक्षा और संस्कार उसको छू नहीं पाए हैं। उसमें अपनी जड़ता के प्रति कट्टरता का भाव है। सभी अंग्रेज भी ऐसे नहीं होते थे। कई सज्जन और सहृदय अंग्रेजों से भी गाँधीजी को वास्ता पड़ा था। परन्तु यहाँ पर एक ऐसे अंग्रेज का चित्रण हुआ है जो काले लोगों के साथ अपमानजनक व्यवहार करता है। इस प्रकार यह कथोपकथन और उसमें निहित भाषा दोनों पात्रों के मनोभावों के अनुसार है।

महात्मा गाँधी भारत की स्वाधीनता के लिए अहिंसात्मक आंदोलन चला रहे थे, किन्तु इसके समानान्तर क्रांतिकारियों का हिंसात्मक आंदोलन भी चल रहा था। ऐसे ही एक क्रांतिकारी मदनलाल ढींगरा थे जिनको सर कर्जन बिली की हत्या के आरोप में मौत की सजा सुनाई गई थी मदनलाल ढींगरा ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए पुलिस कोर्ट में वक्तव्य दिया था जो इस प्रकार है- "अपनी पराधीन मातृभूमि को बन्धन-मुक्त करने के लिए उसने जो कुछ किया था, उसका उसे कुछ भी अफसोस नहीं था। एक हिन्दू के नाते वह अपनी मातृभूमि का अपमान भगवान का अपमान समझता था। वह उस देश के सम्मान के लिए चिन्तित था जो कभी राम का था, कृष्ण का था। आज वह चन्द धन-लोलुपों के पैरों तले रौंदा जा रहा था। मेरे समान दीन-हीन युवक के पास अपनी मातृभूमि की सेवा में अर्पित करने के लिए अपने प्राणों के सिवा क्या है? उन्हें उसकी सेवा में अर्पित कर मुझे अपार पसन्नता हो रही है। मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करुंगा कि मेरा पुनर्जन्म हो तो उसी धरती पर और मैं तब तक ऐसी ही मृत्यु को सहर्ष वरण करता रहूँगा जब तक मेरी मातृभूमि की खोई प्रतिष्ठा वापस नहीं आ जाती।"[37]

मदनलाल ढींगरा का यह वक्तव्य उनकी क्रान्तिकारी देश भक्ति के अनुरूप ही है। इस वक्तव्य का अच्छा प्रभाव विंस्टन चर्चिल पर भी पड़ा था, जो उस समय ब्रिटिश उपनिवेशों के अवर सचिव थे। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रभक्ति के लिए अब तक के दिए गए सभी भाषणों में ढींगरा का भाषण सर्वश्रेष्ठ था। महात्मा गांधी ने

भी ढींगरा के देश-प्रेम की सराहना की पर कहा कि उसका प्रेम अंधा था। हिंसा का उत्तर हिंसा से देकर स्वतंत्रता के युद्ध को लंबा खींचने के अलावा और कुछ दूसरा नहीं होना था। जो भी हो ढींगराजी का उपर्युक्त वक्तव्य बिलकुल उनके चरित्र के अनुरुप है।

परिवेश के सन्दर्भ में डॉ. मिश्र की भाषा

परिवेश या वातावरण या देशकाल के अनुरुप भाषा का प्रयोग होना चाहिए। 'देशकाल' का अर्थ है देश और काल। उपन्यास की भाषा देशऔर काल के अनुरुप होनी चाहिए। इस अध्याय के पूर्ववर्ती पृष्ठों में सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों की चर्चा करते हुए हमने उनके पात्रों की भाषा पर विचार किया है। वहाँ पर पात्रों का विवेचन करते हुए जो उदाहरण हमने दिए हैं उनमें उन-उन उपन्यासों के समसामयिक तथा ऐतिहासिक परिवेश का चित्रण प्रकारान्तर से हो ही गया है, अतः अध्याय के इस अंश में परिवेश की चर्चा करते हुए हम केवल डॉ. मिश्र के पौराणिक उपन्यासों तक ही अपनी चर्चा को सीमित रख रहे हैं।

पवनपुत्र

डॉ. भगवतीशरण मिश्र का 'पवनपुत्र' उपन्यास रामायण की कथावस्तु पर आधारित है। यद्यपि रामायण काल की भाषा तो संस्कृत थी, किन्तु कोई आधुनिक काल का हिन्दी का लेखक उस पर यदि कुछ लिखेगा तो संस्कृत भाषा का पूर्णरूपेण प्रयोग तो वह करेगा नहीं परन्तु उस पौराणिक देशकाल के उपयुक्त आकलन के लिए वह यथासंभव संस्कृत तत्सम प्रधान शब्दावली का प्रयोग करेगा। रामायणकालीन देशकाल या परिवेश को चित्रित करनेवाला निम्नलिखित प्रसंग देखिए जिसमें पवनपुत्र हनुमान सूर्यभक्षण के लिए उद्यत होते हैं:-

''प्रत्यूष काल था। पूर्व समीर प्रवाहमान हो दिशाओं को उल्लसित कर रहा था। माता अंजना कही गई हुई थीं। पिता का भी पता नहीं था। मैं एकाकी गिरि-महल के उस एकान्त कक्ष में पड़ा था। क्षुधा की अनुभूति होती आ रही थी, मेरे माता-पिता के लौटने में जैसे-जैसे विलम्ब होता जाता वैसे-वैसे मेरी क्षुधा तीव्र से तीव्रतर होती जाती। अन्ततः जब वह असह्य हो गई तो मैं कक्ष से बाहर आ गया। फल-जीवी तो मैं था ही। दृष्टि अनायास तरु-शिखरों की ओर गई। आप जानते हीं है वसन्तारम्भ के दिनों अधिकांश वृक्ष पुष्पाच्छादित होते हैं। फलों का प्रायः अभाव

होता है। (तरुशिखरों को फल-विहीन पा मैं घोर निराशा से ग्रस्त हो आया और तभी मेरी दृष्टि पूर्व क्षितिज की ओर खिंची। उधर कापूरा गगन-प्रदेश पूर्णतया इंगुरी हो आया था - जैसे कोई पलाश वन पूरी तरह प्रफुल्लित हो आया हो अथवा कोई विस्तृत वन-प्रान्तर दावाग्निग्रस्त हो गया हो। अद्‌भुत था यह दृश्य । कुछ देर के लिए अपनी क्षुधा को भूल मैं इस शोभा के अवलोकन में व्यस्त हो गया था कि विचित्र घटा था। क्षितिज के नीचे से एक स्वर्णिम, मंडलाकार वस्तु सरक कर ऊपर आने लगी थी। अद्‌भुत था उसका आकर्षण । उसके लाल रंग औरउसकी अतिरिक्त कोमलता, कमनीयता ने मुझ शिशु का मन मुग्ध कर दिया। क्या हो सकता था यह,एक सुन्दर फल के सिवा? मेरे मन ने कल्पना की। मानव-शिशु की आरम्भिक प्रवृत्ति से भी आप पूर्णतया परिचित हैं ही। वह भी हर आकर्षक वस्तु को भोज्य सामग्री ही समझ लेता है और उसे मुँह के हवाले करना शुरु करता है। इस स्वर्णिम और रस-सिक्त-से प्रतीत होते आकर्षक बिम्ब ने मेरे मुँह में पानी भर दिया और और मेरी क्षुधा द्विगुणित-त्रिगुणित हो मुझे व्यथित करने लगी। यह सुमधुर फलप्राप्त हो जाता तो मैं अपनी इस सर्वग्रासी भूख को निःशेष कर पाता, मेरे मन में आया।''[38]

'पवनपुत्र' उपन्यास के उपर्युक्त उद्धरण से उपन्यास का पौराणिक परिवेश स्वतः प्रकट हो रहा है। लेखक ने संस्कृतबहुला भाषा का प्रयोग किया है । उपन्यास में अन्यत्र भी संस्कृत के अनेक उद्धरण मिलते हैं जिनसे उपन्यास का देशकालगत पौराणिक परिवेश उभरकर आया है। रावण द्वारा अपहृत सीता की खोज में निकल पड़े पवनपुत्र जब अशोकवाटिका पहुँचते हैं तब उनके मन में आशंका उत्पन्न होती है कि कहीं विदेहकुमारी माता सीता उनको भी कोई मायावी राक्षस न समझ बैठे। तब वे अपने आराध्य का स्मरण करते हैं और पत्तों की ओट से देव-भाषा में राम-कथा का आरम्भ करते हैं। यथा- ''अस्ति दाशरथि राम भुवन-सुन्दरः। विश्वप्रसिद्धाः अयोध्यानगरी वासस्थली तस्या अलकातुल्या। पितृः वचरनुपालने वनं गत्वा तेनोपकृताः सन्ताः साधकाः तपस्विनश्च। प्रयागः, चित्रकूटः, दंडकारण्यादिनी स्थानानि संचारपूतानि कृत्वा, पंचवत्यां वासकृतं नेन दाशरथिना रामभद्रेन । तत्र मोहिता तस्य भार्या सीता हेममृगेन मायानिमित्तैन। प्रस्थिते रामे तस्य मृगस्याखेटे अपहृता सा दुर्भाग्यदग्धा जनकात्मजा घोर कर्मिणा रावण इति नाम्ना राक्षसेण महापापेन। तस्याः सन्धाने तेन रामभद्रेन प्रेषितो आगतो अहमत्र।''[39]

इस संस्कृत अभिभाषण को सुनकर माता सीता पूछ बैठती है- ''को भवान्?'' (कौन है आप?) इसके उत्तर में पवनपुत्र कहते है- ''हनुमान ! भवत्याः दास।'' (हनुमान, आपका दास) तब सीताजी कहती है - कथं न प्रकटितोऽसि मम

संकाशे?'' (मेरे सामने प्रकट क्यों नहीं होते हो?) उत्तर में हनुमानजी कहते हैं- ''प्रकटितोऽस्मि।''[40] (प्रकट हो गया) इस समूचे वार्तालाप से और उसके बाद भी उनके बीच जो संवाद होता है उससे रामायणकालीन पौराणिक परिवेश पाठकों के सम्मुख उपस्थित होता है।

इसी भाँति उपन्यास की पृष्ठ संख्या 219 पर दिया गया निम्नलिखित संवाद देखिए जो उपन्यास के पौराणिक परिवेश की पुष्टि करता है-

''मातः जानकि!'' माता जानकी!

''को भवान् इह?'' - यहाँ तुम कौन?

''मृगः।'' - मृग - शाखामृग - वानर

''केनात्र संप्रेषितः?'' - किसके द्वारा यहाँ भेजे गए?

''त्वद्यौतेन रघूत्तमेन।'' तुम्हारे दूत के रूप में रामचन्द्र के द्वारा।

''किमिदं हस्ते अस्ति?'' यह हाथ में क्या है?

''तन्मुद्रिका!'' उनकी मुद्रिका।

''है मैथिली यह सुवर्ण (अच्छे रंग-रुप) की अंगूठी, यह सुवर्ण (अच्छे अक्षरो वाली-रामनाम के अक्षर) की अंगूठी, यह सुवर्ण अच्छी जाति की अंगूठी, यह सुवर्ण (स्वर्ण) निर्मित अंगूठी, राम ने तुम्हारे लिए ही भेजी है-

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथिली।

प्रेषित रामचन्द्रेण सुवर्णस्यांगुलीयकम्॥''[41]

उपन्यास का परिवेश पौराणिक है अतः उसमें प्रयुक्त शब्दावली भी उसके अनुरूप है। यहाँ पर कुछ शब्द दि जा रहे हैं - हविष गंध, तपोरता अंजना, द्रोण (दोना), दुर्दान्त दैत्य, तथास्तु, अविच्छिन्न गिरिश्रृंखला, बालितनय, ब्रह्माण्डीय संतुलन, गन्धमादन पर्वत, सिंहासनारुढ, पार्षद, दुरभि संधि, हस्ताक्षरिता, मुद्रांकिता, दशरथात्मज, शिवगण रामवाहिनी, जाह्नवी, एवमस्तु, वीरूपाक्षविद्युन्मालि, कनकभुद्राकर वपु, गांडीवधारी धनुर्धर आदि-आदि।[42] ये शब्द तो केवल उदाहरणस्वरुप प्रस्तुत किए हैं। ऐसे तो कई-कई शब्द उपन्यास के प्रत्येक पृष्ठ पर दृष्टिगोचर होते हैं। इसकी संस्कृत प्रचुर शब्दावली से ही उसके पौराणिक परिवेश का बोध सहजतया हो जाता है 'पवनपुत्र' की भाषा कितनी संस्कृत प्रचुर है उसका उल्लख तो स्वयं लेखक उनके कबीर से सम्बद्ध उपन्यास 'देख कबीर रोया' के अन्त भाग 'अथ कबीर उवाच' में कर चुके हैं।[43]

प्रथम पुरुष

'प्रथम पुरुष' डॉ. भगवतीशरण मिश्रका दूसरा पौराणिक उपन्यास है। इसमें उन्होंने कृष्ण-जन्म से लेकर मथुराधिपति कंस के वध तक की घटनाओं का आलेखन किया है। प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक की भाषा उसके परिवेश के अनुरूप है। एक-दो उदाहरणों द्वारा हम इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। कृष्ण के दधि माखन-चोरी अभियान को लेकर गोपियाँ जब माता जशोदा को शिकायत करती है तो उन गोपियों का डटकर मुकाबला करने के लिए कृष्ण अपने गोपसखाओं की एक बैठक करते हैं । यथा- ''आज एक बैठक जमी थी। नन्द-गृह के पूरब थोड़ी ही दूर पर कदम्ब का एक वृक्ष, गोल गोल, रोमदार पुष्पों से भरा खड़ा था। वायु उसकी सुगन्ध से दिशाओं को दूर-दूर तक पूरित कर रही थी। पीत-पराग-कण, आसपास विकीर्ण हो वातावरण की एक अद्‌भुत मादकता से भर रहे थे। फूलों से बौराई शाखाएँ झुक-झुक आई थीं जिससे पूरब के क्षितिज पर चढते आ रहे सूर्य की रश्मियों को भी उनसे छनकर नीचे आने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। प्रचुर छाया थी उसके ईर्द-गिर्द, विशेषकर प्रातः के इस काल पर्याप्त विस्तृत हो आई छाया ने उस पूरे चबूतरे को आच्छादित कर लिया था जो वृक्ष-मूल के चारों ओर बड़ी कुशलता से निर्मित किया गया था। गोमय-से कल शाम को ही इस स्थान को परिमार्जित कर दिया गया था और आज बैठक के पूर्व उस पर, वक-पंख को भी मात करते श्वेत वस्त्र बिछा दिए गए थे। चबूतरा अवश्य कुछ ऊँचा था।बड़ो के उठने-बैठने को उस पंचायत-स्थल तक पहुँचने के लिए सिढ़ियों की एक छोटी पंक्ति भी निर्मित थी। उन्हीं सीढ़ियों के सहारे सब ऊपर मिल बैठे थे - कन्हैया, दाउ, श्रीदामा, सुबल, सुदीर्घ और सुपच आदि। दाऊ यद्यपि उनमे बड़े थे पर इस सभा के संचालन का भार उन्होंने कन्हैया पर ही छोड़ रखा था। वे यथावाश्यक अपना मन्तव्य देकर बीच-बीच के अवरोधों को दूर करते थे।''[44]

उपर्युक्त परिच्छेद में प्रयुक्त भाषा उपन्यास के पौराणिक सन्दर्भ के अनुरुप ही है। यद्यपि 'पवनपुत्र' की तरह नितान्त संस्कृत प्रचुरता का अभाव है और बौराई शाखाएँ, ईर्द-गिर्द, चबूतरा जैसे कुछ शब्द मिलते हैं परन्तु दूसरी तरफ कदम्ब वृक्ष, कदम्ब के रोमदार पुष्प, गोमय, दाऊ, कन्हैया श्रीदामा जैसे शब्दों द्वारा गोकुल के परिवेश को उभारने का प्रयत्न भी लेखक ने किया है।

व्रज मण्डल में कृष्ण की पूजा होती थी। गोप-गोपियाँ सखा भाव से पूजा करते थे परन्तु भाद्रपद की अनन्त चतुर्दशी को श्रीकृष्ण पूजन का आयोजन होता था उस सन्दर्भ में निम्नलिखित वर्णन देखिए- ''हँसी थीं वे उनकी विचित्र बात पर।

भाद्रपद को अनन्त चतुर्दशी थी आज। देवी-पूजन के पश्चात् वे सभी श्रीकृष्ण-पूजन को आई थी। यशोदा उन्हें घर से बाहर नहीं जाने दे रही थी। पर वे खींच ही ले गई थीं उन्हें आँगन से बाहर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे। पहले बड़े प्रेम से सजाया था उन्हें। सिर के घुँघराले केशों को जटा-जूट का रूप दिया था। उनमें मोर-पिच्छ खोंसे थे एक तरफ। हाथ में मुरली पकड़ाई थी और उसे होठों से लगाने को बाध्य किया था। पीताम्बर के नए टुकड़े तो अपने साथ सब लाई ही थीं। उन्हीं से बड़े कौशल सै सजाया था उन्हें । कानो तक विस्तृत दीर्घाकार आँखों में काजल की लकीर खींची थी। उन्नत ललाट के मध्य कुंकुम का पीला तिलक किया था और फिर उन्हें अपनी उसी त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होने को बाध्य किया था। सबकुछ करते गए थे कन्हैया। उपाय भी क्या था? गोपबालाओं की संख्या इतनी थी कि उनसे बलपूर्वक निबटना आसान नहीं था। समूचा वृन्दावन ही जैसे उमड़ पड़ा था उनके पूजन को । उनमें सब थीं - चंचल किशोरियाँ,गम्भीर प्रौढ़ाएँ और आस्थावान वृद्धाएँ।''[45]

उपर्युक्त परिच्छेद की भाषा पौराणिक परिवेशके अनुरुप है। घुंघराले केश, जटाजूट, मोरपिच्छ, पीताम्बर, त्रिभंगी मुद्रा, गोप-बाला आदि शब्दों से व्रज मण्डल का परिवेश भी उभरकर आता है। प्रस्तुत उपन्यास कृष्ण और व्रज मण्डल के परिवेश पर आधारित है। अतः उनमें कई ऐसे शब्द आए हैं जिनसे इसके परिवेश को पृष्टि होती है - मथुराधिपति, कालिन्दी कूल, वन बिलाव, कान्हा, मैया, कन्हैया, पूतना, ललिता, वृषभानु, श्याम, बासुरी की टेर, वृत्सासुर, बकासुर, पीताम्बर, यदुवंशी, कुवलयापीड हाथी, वृषभानु सुता, कुब्जा, उग्रसेन आदि-आदि।[46] दूसरी और प्रस्तुत उपन्यास में पौराणिक परिवेश भी है। अतः उसमें परिवेश के यथार्थ चित्रण हेतु निम्नलिखित शब्द आए हैं- हिरण शावक, मुक्तकेशी, ताम्बूल, स्थैर्य, यमलार्जुन तरु, सद्य जात वत्स, सद्यः प्रस्फुटित, निष्पादन, कारण्डव, तृणावर्त, वाहिनी, कुंतल, बृहत्सानुपुर, शिशुहन्ता, रिक्त-हस्त, शाखा-मृग, पुष्प बोझिल वल्लरी, आकाशचारी चन्द्रमा, कर्णरन्ध्र, अभिसारिका, दुग्धपलित विषधर, खडगहस्त, अपूप (पूआ), हविषान्न, अंकमाल देना, संज्ञाशून्य, पकवान्न, श्वेतवस्त्रा, रासेश्वरी, मुष्टिक, रत्नगर्भा, वार्धक्य आदि-आदि।[47]

पुरुषोत्तम

डॉ. मिश्र द्वारा प्रणीत 'पुरुषोत्तम' उपन्यास भी कृष्ण के जीवन पर आधारित है। इसमें कंस वध के बाद की कथा को लिया है। इसमें कृष्ण वध तक की कथा

का आलेखन है। कुरुक्षेत्र के युद्ध तथा गीता केउद्‌बोधन को भी इसमें लिया गया है। अतः इसका परिवेश भी पौराणिक है।

कुरुक्षेत्र के युद्ध के समय आचार्य द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामा को लेकर चिन्तित है। निम्नलिखित परिच्छेद में उसका चित्रण देखिए:

"आचार्य अपने कक्ष में चिन्ता-मग्न थे। भावी युद्ध की भयानकताओं ने उनके मन-मस्तिष्क को आक्रान्त और आन्दोलित कर रखा था। आखिर इस युद्ध में केवल पाण्डव-पक्ष के लोग ही तो संभावित मरण के आखेट होने वाले नहीं थे । उनके अपने अत्यन्त प्रियजन-स्वजन भी तो इस विनाशकारी समर-यज्ञ की आहुतियाँ बनने को प्रस्तुत थे। और-तो-और उनका एकमात्र प्रिय-पुत्र, समस्त ज्ञान-विज्ञान और दर्शन का प्रकाण्ड पण्डित अश्वत्थामा भी तो किसी बिल्व-फल की तरह अपने मस्तक को अपनी अंजलि में लिए कौरवों की ओर से समर हेतु सन्नद्ध हो गया था। वे इस युद्धाग्नि में स्वाहा हो गए तो कोई बात नहीं, जीवन के असंख्य उत्थान-पतन, अवदान-उपदान देख चुके थे वे पर यह उनका हृत्खंड आत्मज अश्वत्थामा? उसने कहाँ कुछ देखा था इस वैभव-सम्पन्न धरती की विपुलता को, इसकी प्राकृतिक सुषमा और श्री सौन्दर्य तक को भी? आसेतु हिमाचल विस्तृत इस आकर्षण आर्यभूमि का कितना कुछ अनदेखा-अनछुआ शेष था उसके लिए? अगर ईश्वर न करे यह इस महासमर में काम आ गया तो..........।"[48]

उपर्युक्त परिच्छेद में संस्कृत बहुला भाषा का प्रयोग हुआ है। आक्रान्त, समर-यज्ञ, आहुतियाँ, युद्धाग्नि, महासमर जैसे शब्दों के कारण युद्ध की भयानकता का परिवेश भी उभरकर आया है। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की भाषा अपने परिवेश निर्माण में सफल रही है।

उपन्यास में प्रयुक्त शब्द भी अपने परिवेश के अनुरूप है। जरासंध, ब्रह्मवैवर्त पुराण, सीमन्त रेखा (मांग), रक्ताभ चेहरा, कालयवन, भीक्षाटन, रुकमणी, प्रसेनान्वेषण, हस्तिनापुर, यवनिका, पाचजन्य शंख, अर्धचन्द्र बाण, ऋषिकेश, वास-स्थान, सुयोधन, शर-संधान, साधना-स्थली, हविष-घूम्र, क्षेत्रज्ञ, ब्रह्मसूत्र, भीष्म रुपी भय, कलिंग सेना, वान-वर्षण, बुभुक्षित व्याघ्र, अलम्बुश, दिव्यास्त्र, भगवान अंशुमालि, साम्ब आदि-आदि।[49] इन शब्दों से उपन्यास के महाभारतकालीन परिवेश का पता स्वयमेव हो जाता है।

अंग्रेजी परिवेश

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों में कहीं-कहीं अंग्रेजी परिवेश भी मिलता है। ऐसा विशेषतः उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में हुआ है जिनमें अंग्रेज पात्र मिलते हैं। उनका 'पहला सूरज' उपन्यास छत्रपति शिवाजी के जीवन पर आद्धृत है। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि शिवाजी के समय तक अंग्रेजों का आगमन शुरु हो गया था। कुछ इसाई धर्म-प्रचारक दूर-दराज के इलाकों में ईशामसीह के उपदेशों का प्रचार कर रहे थे। प्रस्तु उपन्यास में फादर रेवरेंड स्मिथ नामक एक ईसाई पादरी का उल्लेख मिलता है उनकी भाषा में हमें अंग्रेजी परिवेश प्राप्त होता है। फादर रेवरेंड स्मिथ शिवाजी के दादा मालोजी को मिलते हैं। मालोजी के साथ उनका जो वार्तालाप होता है उसमें हमें अंग्रेजी परिवेश प्राप्त होता है। फादर मालोजी को बाइबल देते हैं। मालोजी बाइबल को स्मिथ के हाथों से लेकर अपने सिर पर लगाते हैं इस पर फादर कहते हैं - ''तुम मेरे धर्मग्रंथ का रेस्पेक्ट किया ! गुड, गुड, वेरी गुड। पर मैंने यह बुक प्रणाम करने नहीं, पढ़ने को दिया। मैं बताता, कहाँ पढ़ना। मैं साबित करना मांगता कि तुम ग्रेट सेंट, गॉड का बहुत-बहुत प्यारा ।[50]

फादर मालोजी के हाथ से पुस्तक लेकर एक पृष्ठ खोलकर उनको पढ़ने के लिए कहते हैं। उसपर मालोजी कहते हैं कि उनको अंग्रेजी नहीं आती। मालोजी के ये कहने पर फादर उनको समझाते है कि यह बाइबल के न्यू टेस्टामेंट का जेम्स नामक चैप्टर है। ''इस चैप्टर के अन्त में कहानी है तुम्हारे समान ही एक सैंट की। एलिजा की स्टोरी है यह। बाइबिल कहती है एलिजा बड़ा रीलिजियस आदमी था। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वर्षा नहीं हो और साढ़े तीन वर्षों तक पानी नहीं गिरा। शायद उस समय लोग वर्षा से तंग आ गए थे, इसलिए एलिजा ने गॉड से ऐसी प्रार्थना की थी। फिर जब पानी की जरुरत पड़ी लोग एलिजा के पास आए। एलिजाने गॉड से प्रेयर की और लो, साढ़े तीन वर्षों बाद आसमान से धुआंधार 'बरसा' शुरु हो गयी ।''[51] फादर एलीजा के प्रेयर कीबात इसलिए करते हैं कि मालोजी की प्रार्थना से भी अकाल का संकट टला था और मुसलाधार बारिश हुई थी।इस सन्दर्भ में फादर मालोजी से कहते हैं- ''वही तो मैं कह रहा था कि तुम, आप महान् हो, मालो महाराज। गॉड ने तुम्हारी बात मान पानी बरसाया। तुम हमारा एलिजा हो, बाइबिल का एलिजा। तुम सेंट हो, क्राइस्ट का प्यारा। मैं तुम्हारा दर्शन पा फॉर्चुनेट हुआ।''[52]

यहाँ पर फादर की जो हिन्दी भाषा है उसमें बीच-बीच में अंग्रेजी शब्द आते हैं, और उनका हिन्दी बोलने का जो लहजा है वह भी अंग्रेजी लहजा है। जब कोई

अंग्रेज हिन्दी बोलता है तो उसका 'टोन' या 'लहजा' हिन्दी का न होकर अंग्रेजी का ही रहता है। जहाँ पर फादर मालोजी का सम्मान भी करते हैं और साथ ही 'तुम' से सम्बोधित भी करते हैं, क्योंकि अग्रेंजी में 'तुम' और 'आप' ऐसे दो शब्द नहीं है। वहाँ छोटे-बड़े सभी के लिए 'You' से ही काम चलाया जाता है। 'गॉड ने तुम्हारी बात मान पानी बरसाया' यहाँ पर शुद्ध हिन्दी वाक्य-रचना होती- 'गॉड ने तुम्हारी बात को मानकर पानी बरसाया उसी तरह फादर का वाक्य है- 'तुम हमारा एलिजा हो, बाइबल का एलिजा। तुम सेंट हो क्राइस्ट का प्यारा।' यहाँ पर हिन्दी वाक्य-रचना इस प्रकार होती- 'आप हमारे एलिजा हो, बाइबल के एलिजा। आप सेंट हो, क्राइस्ट के प्यारे ।' इस प्रकार यहाँ पर फादर की जो हिन्दी भाषा है उसका लहजा 'इंग्लीश मैन' वाला है। अतः फादर की भाषा में हमें अंग्रेजी परिवेश का एहसास होता है।

डॉ. मिश्र का 'शान्तिदूत' उपन्यास निकट अतीत को लेकर लिखा गया है। उसमें महात्मा गाँधी के समय के इतिहास को लिया गया है। कोई चाहे तो इसे राजनीतिक उपन्यास की कोटि में भी रख सकता है। गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रका में जो सत्याग्रह छेड़ा था वह अंग्रेजों के सामने था। और उनके भारत आगमन के पश्चात् जो स्वाधीनता संग्राम का लम्बा दौर चला वह भी अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ था। अतः उनके सम्पर्क में अनेक अंग्रेज वाइसरोय तथा अफसर आदि आते हैं जिनकी भाषा में हमें अंग्रेजी परिवेश उपलब्ध होता है। उनके भाई को पोरबंदर के अंग्रेज पोलिटिकल एजेंन्ट का कोई काम था। गाँधीजी इस एजेंन्ट को जानते थे। लंदन में उससे उनकी दोस्ती थी। अतः गांधीजी अपना विजिटिंग कार्ड भेजते हैं। उस समय वह ऑफिसर गाँधीजी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता। यहाँ उन दोनों के बीच जो वार्तालाप हुआ था उसे दिया जा रहा है-

''इट्स ओल राइट।'' (ठीक है) ऑफिसर ने उदासीनता से कहा। वह उन्हें पहचान तो गया ही था पर लन्दन की मित्रता को वह भारत में मानने को तैयार नहीं था।

गाँधी ने फिर भी हार नहीं मानी और अपने भाई की सिफारिश कर ही दी।

''योर ब्रदर इज अनरिलायबल''। आई कान्ट हेल्प।'' (तुम्हारा भाई अविश्वसनीय है। मैं कोई सहायता नहीं कर सकता)।

गाँधी फिर भी अपनी जिद पर अड़े रहे। अंग्रेज ऑफिसर की भौहें चड़ीं। वह कुछ चिड़ कर बोला, ''विल यू नाऊ गेट आउट?'' (अब क्या आप बाहर जाने का कष्ट करेंगे?)

गाँधी को यह बात बुरी लगी। यह उनका अपमान था। उन्होंने फिर जोर देकर कहा, "आई हैव टू से समथिंग। यू आर सपोज्ड टू लिसेन टू पिपुल्स ग्रिवान्सेज।" (मैं कुछ कहने आया हूँ। आपसे जनता की फरियाद सुनने की अपेक्षा की जाती है)

"व्हाट नानसेन्स।" (यह क्या बकवास है) वह बोला और चपरासी की ओर मुखातिब होकर बोला, "शो हिम दी दोर।" (इन्हें दरवाजें का रास्ता दिखाओ)

गाँधी खड़े हो गए पर अपनी बात उन्होंने जारी रखी, "दिस इज शीयर हाई हैंडेडनेस, यू मस्ट लिसेन टू मी।" (यह घोर मनमानी है आपको मेरी बात सुननी ही पड़ेगी)।

अंग्रेज भी तमतमा कर खड़ा हो गया। उसका गोरा मुख अंगारे की तरह लाल हो आया। "पुरश हिम आउट आफ दी डोर" (इसे धक्का देकर दरवाजे से बाहर कर दो)। वह चपरासी की ओर मुखातिब होकर बोला।[53]

उपर्युक्त वार्तालाप से महात्मा गाँधी और अंग्रेज पोलिटिकल एजेंन्ट उभय के चरित्र पर तो प्रकाश पड़ता ही है, किन्तु अंग्रेजी भाषा के कारण अंग्रेजी परिवेश का भी निर्माण हुआ है।

बंगाली परिवेश

डॉ. भगवतीशरण मिश्र बिहार के है जो बंगाल का एक समीतवर्ती प्रदेश है। दूसरे डॉ. मिश्र भारत सरकार की सेवा में रह चुके हैं, अतः बंगला भाषा-भाषी चरित्र भी उनके उपन्यासों में पाए जाते हैं. जहाँ कही भी इस प्रकार के पात्र आए हैं, बंगला परिवेश का निर्माण अपने आप हो गया है। इस तथ्य की पुष्टि हेतु हम कुछेक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहेंगे डॉ. मिश्र के 'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास में उपन्यास के नायक विश्वंभर को गीतिका के लिए चाइना थर्टी नामक होमियोपेथी की दवाई चाहिए थी। वह डॉ. घोष नामक एक बंगाली डॉक्टर के क्लीनिक में पहुँच जाता है। वहाँ उन दोनों में जो वार्तालाप होता है वह यहाँ प्रस्तुत है-

"आमि किछु बुझते पारि ना - मैं कुछ समझ नहीं पाता हूँ।"

"एई टा दोकान नेई - यह दुकान नहीं है।" घोष दादा रोष से भरकर बोले।

"तोखन कि? - तब क्या है?' उसने पूछा।

"ताई तो बोलजाम जे आपनार चोख नेइँ। बाहरि भालो कोरे लिखे आछे। एई टा क्लिनिक । डॉ. घोषेर क्लिनिक - इसलिए तो कह रहा हूँ कि आपको आँखें नहीं

है। बाहर ठीक से लिखा हुआ है। यह क्लिनिक है। डॉ. घोष का क्लिनिक।''

''तोखन दावा पा जावे ना कि? तब दवा मिलेगी या नही? उसने धैर्य के साथ पूछा।

'प्रोथम डॉक्टरेर फिस दिते होबे। तोखन दावार नाम। - पहले डॉक्टर की फीस देनी होगी, तब दवा की कीमत।''

''यदि डॉक्टरेर दरकार नेईं तोखन? - यदि डॉक्टर की आवश्यकता नहीं हो तब?'' उसे चाइना-थर्टी लेनी ही थी हर कीमत पर।

''तोखन डॉक्टरेर फिस देते होबे - तब भी डॉक्टर की फीस देनी होगी।'' डॉ. घोष बोले।

''केनो? - क्यों?'' उसे डॉक्टर का यह तर्क समझ में नहीं आ रहा था। यदि डॉक्टर को दिखाना ही नहीं है तो फीस देने की क्या आवश्यकता है।

''बोललाम ये एटा दुकान नेईं, नेईं । क्लिनिक, क्लिनिक को तो बार बोलबो? कहा तो यह दुकान नहीं है, नहीं है । क्लिनिक है, क्लिनिक कितनी बार बोलूँगा?

''तोखन डॉक्टरेर फिस दिले आवार दावार दाम दिले, काज चोलबे? - तब डॉक्टर की फीसऔर दवा का दाम देने से काम चल जाएगा?''

''निश्चयि। निश्चय ही।''[54]

डॉ. मिश्र बंगला भाषा के भी अच्छे जानकार है, अतः जहाँ-जहाँ उनकी औपन्यासिक सृष्टि में बंगला चरित्र आए हैं वहाँ-वहाँ उन्होंने बंगाली परिवेश के निर्माण हेतु बंगला भाषा और बंगला शब्दों का छूट से उपयोग किया है। बंगला भाषा का प्रयोग उनके 'शान्तिदूत' उपन्यास में भी मिलता है। इसके अतिरिक्त उनके उपन्यास 'का के लागूं पांव' में भी जहाँ गुरु तेगबहादुर की बंगाल यात्रा का विवरण मिलता है वहाँ कहीं-कहीं बंगला भाषा का प्रयोग लेखक ने किया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यथार्थ परिवेश निर्माण में भाषा का महत्व अपरिहार्य समझा जाता है।

भोजपुरी परिवेश

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, डॉ. मिश्र बिहार के हैं, अतः बिहार के समीपवर्ती भाषा-क्षेत्रों की भाषाओं का भी प्रयोग उनके उपन्यासों में मिलता है। चम्पारण भोजपुरी भाषा का क्षेत्र है। डॉ. मिश्र के उपन्यास 'शान्तिदूत' में चम्पारण क्षेत्र के राजकुमार शुक्ल का गाँधीजी से परिचय होता है। राजकुमार शुक्ल चम्पारण

क्षेत्र के थे और ठेठ भोजपुरी भाषा में बोलते थे। उनकी भाषा के कुछ उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है-

''चम्पारण के देहात से आइल बानी, अपने के बहुत नाम सुन-पढ़ के।'' ...... कष्ट के पारावार नइखे। हमनी के मरल या जीयल बराबरे बा। अपने के ही हाथ हमनी के उधार (उद्धार) लिखल बा । चम्पारने के तबाही के कहानी बहुत लामा (लम्बा) बा। उहां चल के खुद देखन जाय बिना देखले हमनी के कष्ट के रउआ अन्दाज न होई।......... चम्पारण, बिहार के एगो जिला ह। मोतीहारी में जिला कारजालय (कार्यालय) बा। नीलहा साहब सब हमनी के जीवन के नरक बना देले बाड़न स।''[55]

यहाँ राजकुमार शुक्ल भोजपुरी भाषा में बोलते हैं और इस प्रकार यहाँ पर हमें भोजपुरी परिवेश का अनुभव होता है। 'शान्तिदूत' के 'अतिरिक्त' डॉ. मिश्र के 'बंधकआत्माएँ' उपन्यास में भी भोजपुरी परिवेश उपलब्ध होता है।

'बंधक आत्माएँ' उपन्यास में जिन चमत्कारी बाबा का उल्लेख हुआ है वे कभी-कभी भोजपुरी भाषा का प्रयोग करते हैं। उदाहरणतया निम्नलिखित वाक्य दृष्टव्य है - ''ई कौनो तमाशा थोडे है?, बोल तब का चाहिं?, फल के नाम बोल, सेव भी मिल जाई।''[56]

राजस्थानी परिवेश

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास 'देख कबीरा रोया' में राजस्थानी परिवेश मिलता है। एक स्थान पर जहाँ कबीर अपने कुछ साधुओं को लेकर जा रहे थे तब चंबल घाटी के पास उनकी भेंट डाकुओं के सरदार से होती है। डाकुओं का यह सरदार राजस्थानी भाषा का प्रयोग करता है यथा - ''किस भाखा में बोले जा रह्यो यह सब? साफ-साफ इधर की भाखा में उगलो जो कुछ कहना है? वर्ना मेरे हाथ में पड्यो इस तलवार को देख्यो, एक क्षण में तुम्हारी गरदन चंबल के पानी में ऊब-यूडूब करत्यो नजर आयो।............. पर तुम्हारे साथ लगयो ये लोग और उनके और तुम्हारे हाथों में पड्यो ये हथियार ? एक तो खौफनाक नदी दूसरे तुम 'शस्त्रधारी' हम तुम्हारा 'विसवास' कयसे कर्‍यो सकयो? हमारे पंडितों ने तो लिख्यो-नदियों का, शस्त्रधारियों का, नखवालों (बाघ, सिंह आदि) सींगवालों का, स्त्रियों का और राजाओं का विसवास नहीं करयो। यहाँ तो दो-दो मौजूद नदी भी शस्त्रधारी भी।''

यहाँ जो भाषा प्रयुक्त हुई है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है उसका वक्ता मुरैना, भींड आदि चम्बल क्षेत्र का होना चाहिए। प्रयुक्त भाषा राजस्थानी परिवेश को चित्रित करती है। डॉ. मिश्र का 'पीताम्बरा' उपन्यास तो मीराबाई के जीवन पर आधारित है। मीराबाई मूलतः राजस्थान की भक्त कवयित्री है। उनकी काव्य भाषा तो व्रज भाषा है पर उस पर राजस्थानी का प्रभव स्पष्टतया लक्षित होता है। उनके अनेक पदों में राजस्थानी परिवेश को लक्षित किया जा सकता है।

पंजाबी परिवेश

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के दो उपन्यासों में पंजाबी परिवेश मिलता है - 'का के लागूं पांव' और 'गोबिन्द गाथा' । इन उपन्यासों में गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह के जीवन को लिया गया है। अतः इन उपन्यासों में पंजाबी परिवेश का मिलना स्वाभाविक ही कहा जाएगा। जब गुरु गोविन्दसिंह का जन्म होता है तब गुरु सुदूर बंगाल प्रदेश में थे। गुरु गोविन्दसिंह का जन्म पाटलिपुत्र नगर में हुआ था अतः वहाँ से एक सन्देशवाहक गुरु तेगबहादुर के पास गुरुमुखी शैली में लिखा एक पत्र लेकर जाता है उस समय जो भाषा प्रयुक्त हुई है उसमें हमें पंजाबी परिवेश उपलब्ध होता है। यथा - ''मैं पटने से आ रहा जी वहाँ तो खुशी का समुद्र उमड़ो पड्यो है........ परमेश्वर ने हमारी सुन ली जी! साढ़े पैतालिस वर्ष की इस पकी उमर में पुत्तर बख्शो है उसने मुझको।......... खूब। खूब। खूब सही सलामत जी। पुत्तर जो जनमते ही एक पल का नहीं पाँच माह का लगे है। यही तो लिखा है इस खत में। लो तुसी भी पढ़ो न।''[58]

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त दोनों उपन्यासों में अनेक स्थानों पर पंजाबी शब्द उपलब्ध होते हैं। यथा - असी, जच्चा-बच्चा, लंगर, पराकरमी, किरपाण, जोरु, सुरति, आखणि आदि-आदि।[59] यतन, परवचन, अवस्य, कीरत, किरपा, किरपान, छमा, खेयाती, सरधा, सिध, समरपित, परयाप्त, परवीण, परसतुत, परमपरा, परतीकातमक आदि-आदि।[60]

निष्कर्ष

अध्याय के समग्रावलोकन के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं:-

(01) उपन्यास की भाषा मानव जीवन का गद्य है, फलतः उसमें लेखक का प्रयास रहता है कि वह पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करें।

(02) डॉ. मिश्र के उपन्यासों में हमें विभिन्न वर्ग, वर्ण, जाति और व्यवसाय के पात्र मिलते हैं और इन विभिन्न वर्ग और कोटियों के पात्रों की भाषा उनके अनुरुप पाई जाती है।

(03) यद्यपि लेखक ने पात्रानुरुप भाषा का प्रयोग किया है तथापि उनकी भाषा में संस्कृत प्रचुर शब्दावली मिलती है। ऐसी भाषा प्रायः शिक्षित और संस्कृत के जानकार पात्रों में मिलती है।

(04) डॉ. मिश्र के उपन्यासों में निम्न वर्ग की भाषा कुछ हद तक मानक भाषा के करीब रही है। ठेठ भाषा का प्रयोग तो कुछ अवधि भाषी और भोजपुरी भाषी पात्रों में दृष्टिगत होता है।

(05) व्यावसायिक दृष्टि से डॉ. मिश्र के पात्रों में प्रोफेसर, पुजारी, सरकारी अधिकारी, पर्यावरणवादी, ठेकेदार, वकील, नेता आदि व्यवसायों से जुड़े हुए पात्र मिलते हैं और उनकी भाषा उनके वर्ग और व्यवसाय के अनुरूप पाई जाती है।

(06) 'पहला सूरज', 'पीताम्बरा', 'देख कबीरा रोया', 'का के लागूं पांव', 'गोबिन्द गाथा' तथा 'शान्तिदूत' आदि डॉ. मिश्र के ऐतिहासिक उपन्यास है और उक्त उपन्यासों की भाषा क्रमशः छत्रपति शिवाजी, मीराबाई, कबीर, गुरु तेगबहादुर गुरु गोविन्दसिंह तथा महत्मा गाँधी के समय के अनुरूप है।

(07) 'पवनपुत्र', 'प्रथम पुरुष' तथा पुरुषोत्तम आदि डॉ. मिश्र के पौराणिक उपन्यास है। इन उपन्यासों की भाषा उनेक पौराणिक परिवेश को उकेरने में सक्षम रही है।

(08) डॉ. मिश्र के उपन्यासों में हमें अंग्रेजी परिवेश की भाषा, बंगाली परिवेश की भाषा, भोजपुरी परिवेश की भाषा, राजस्थानी परिवेश की भाषा तथा पंजाबी परिवेश की भाषा उपलब्ध होती है। अतः कहा जा सकता है कि डॉ. मिश्र की भाषा में परिवेशजन्य विभिन्नता के दर्शन होते हैं ।

(09) समग्रतया कहा जा सकता है कि डॉ. मिश्र ने हिन्दी शब्द सम्पदा के कोश को एक हद तक समृद्ध किया है।

*****

सन्दर्भानुक्रम

1. द्रष्टव्य : क्षितिज का नवलकथा विशेषांक : सं. सुरेश जोशी
2. एक और अहल्या : पृ. 132
3. वही : पृ. 133
4. लक्ष्मण-रेखा : पृ. 204-205
5. वही : पृ. 159-160
6. नदी नहीं मुड़ती : पृ. 98
7. वही : पृ. 121-122
8. वही : पृ. 122
9. वही : पृ. 122
10. सूरज के आने तक : पृ. 153
11. वही : पृ. 83
12. लक्ष्मण-रेखा : पृ. 73
13. एक और अहल्या : पृ. 221
14. नदी नहीं मुड़ती : पृ. 100-101
15. सूरज के आने तक : पृ. 135
16. वही : पृ. 135
17. एक और अहल्या : पृ. 186
18. वही : पृ. 186-187
19. सूरज के आने तक : पृ. 42
20. वही : पृ. 26-27
21. लक्ष्मण-रेखा : पृ. 19
22. नदी नहीं मुड़ती : पृ. 80
23. सूरज के आने तक : पृ. 11
24. एक और अहल्या : पृ. 198
25. लक्ष्मण-रेखा : पृ. 192-193
26. वही : पृ. 194

27. कक्षा में देसाई साहब के मुख से सुना हुआ
28. नदीं नहीं मुड़ती : पृ. 89-90
29. सूरज के आने तक : पृ. 21
30. पहला सूरज : पृ. 30-31
31. वही : पृ. 133-134
32. पीताम्बरा : पृ. 304-305
33. देख कबीरा रोया : पृ. 294
34. का के लागूं पांव : पृ. 54-55
35. गोबिन्द गाथा : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 185
36. शान्तिदूत : पृ. 7-8
37. वही : पृ. 81
38. पवनपुत्र : पृ. 13-14
39. वही : पृ. 133-134
40. दृष्टव्य : वही : पृ. 134-137
41. वही : पृ. 219
42. वही : पृ. सं. क्रमश : 9, 11, 11, 39, 66, 103, 164, 211, 242, 266, 266, 279, 298, 298, 319, 334, 335, 336, 342, 354, 360
43. दृष्टव्य : देख कबीरा रोया : पृ. 391-392
44. प्रथम पुरुष : पृ. 118-119
45. वही : पृ. 297-298
46. वही : पृ. सं. क्रमश : 15, 26, 68, 96, 128, 129, 170, 207, 207, 237, 256, 258, 277, 324, 339, 360, 372, 374, 382
47. वही : पृ. सं. क्रमश : 41, 43, 78, 95, 96, 97, 136, 158, 168, 170, 170, 188, 191, 191, 205, 205, 232, 253, 254, 255, 265, 267, 300, 300, 315, 337, 347, 347, 362, 376, 380, 382
48. पुरुषोत्तम : पृ. 263
49. वही : पृ. सं. क्रमश :7, 8, 13, 40, 59, 86, 135, 155, 207, 232, 266, 268, 296, 297, 318, 320, 359, 359, 395, 396,

434, 436, 436, 454, 456, 475, 477, 498

50. पहला सूरज : पृ. 29
51. वही : पृ. 29-30
52. वही : पृ. 30
53. शान्तिदूत : पृ. 39
54. लक्ष्मण-रेखा : पृ. 101-102
55. शान्तिदूत : पृ. 104
56. दृष्टव्य : बंधक आत्माएँ : पृ. 63-64
57. देख कबीरा रोया : पृ. 342
58. का के लागूं पांव : पृ. 32
59. वही : पृ. सं. क्रमश : 32, 32, 64, 63, 192, 257, 258, 257
60. गोबिन्द गाथा : पृ. सं. क्रमश : 16, 42, 72, 154, 156, 196, 198, 201, 203, 204, 297, 297, 309, 309, 321, 322

******